पद्य-पारिजात



[सूरदास से लेकर आधुनिक काल तक की नवीन चुनी
हुई कविताओं का संग्रह]

सम्पादक
श्रीप्रफुल्लचन्द्र ओझा "मुक्त"

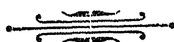
प्रकाशक
ओझा बन्धु आश्रम, इलाहाबाद
।।=)

पहलीबार, एक हजार

मुद्रक
बाबू विश्वम्भरनाथ भार्गव, स्टैन्डर्ड प्रेस, इलाहाबाद ।

मई, १९३०

पद्य-पारिजात



तुलसीदास

(सन्त-असज्जन बन्दना)

बन्दउँ सन्त समानचित, हित अनहित नहिं कोउ।
अंजलिगत सुभ सुमनजिमि, सम सुगन्ध कर दोउ॥
संत सरलचित जगतहित, जानि सुभाउ सनेहु।
बाल विनय सुनि करि कृपा, रामचरन रति देहु॥
बहुरि बन्दि खलगन सतिभाये। जे बिनु काज दाहिनेहु बायें॥
परहित-हानि-लाभ-जिन केरे। उजरे हरष विपाद बसेरे॥

तुलसीदास कहते हैं—समान हृदयवाले सन्तों की मैं वन्दना करता हूँ, जिनका न कोई मित्र है और न कोई शत्रु। जिस प्रकार, अञ्जलि में रक्खा हुआ फूल, समान रूप से दोनों हाथों को सुगन्धित कर देता है। सज्जनों का चित्त सरल होता है, वे जगत के हितैषी होते हैं, मेरा स्वाभाविक स्नेह जानकर, मेरी यह बालविनय सुनकर और मुझ पर कृपा करके वे रामचन्द्र के चरणों की भक्ति मुझे दें।

बहुरि = पुनः। बन्दि = बन्दना करके, प्रणाम करके। सतिभाये = सच्चे हृदय से। दाहिनेउ बायें = दहने-बाएँ, प्रसन्न अप्रसन्न। दूसरे के हित की हानि अर्थात् अहित ही जिनका लाभ है और किसीके उजड़ने पर जिन्हें हर्ष और बसने पर विषाद होता है।

हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
जे परदोष लखहिं सहसाखी। परहित-घृत जिनके मन माखी॥
तेज कृशानु रोष महिषेसा। अघ-अवगुन-धन-धनी धनेसा॥
उदयकेतु सम हित सबही के। कुंभकरन सम सोवत नीके॥
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम-उपल कृषी दलि गरहीं
बंदउँ खल जस शेष सरोषा। सहस बदन बरनइ परदोषा॥
पुनि प्रनवउँ पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहसदस काना॥
बहुरि सक्र सम बिनवउँ तेही। संतत सुरानीक हित जेही॥
बचन बज्र जेहि सदा पियारा। सहस नयन परदोष निहारा॥

विष्णु और शिव के यश रूपी चन्द्रमा के लिए जो राहु के समान हैं और दूसरों का काम बिगाड़ने में जो सहस्र हाथोंवाले—महा शक्तिशाली हो जाते हैं, जो सहस्रों आँखों से दूसरों का दोष निहारते हैं और दूसरों के हितरूपी घी में जिनका मन मक्खी के समान पड़ जाता है, जिनका तेज आग के समान और क्रोध महिषासुर के समान है, पापों और दुर्गुणों के धन से जो कुबेर के समान धनी हैं, जिनका उदय सब लोगों के लिए केतु के समान है और जो कुम्भकर्ण के समान सोते हुए ही अच्छे हैं, दूसरों के अहित के लिए जो शरीर छोड़ देते हैं—जैसे, ओले खेती को नष्ट करके स्वयं भी गल जाते हैं, क्रुद्ध शेषनाग के समान वैसे दुष्टों की मैं बन्दना करता हूँ, जो सहस्रों मुँह से दूसरे का दोष वर्णन करते हैं। पुनः पृथुराज के समान उन लोगों को प्रणाम करता हूँ जो दस सहस्र कानों से दूसरों का दोष सुनते हैं। पुनः इन्द्र के समान उन्हीं की मैं बन्दना करता हूँ जिन्हें देवताओं की सेना प्रिय है (अथवा, अच्छी शराब प्यारी है)। वज्र के समान (कठोर) बचन जिन्हें सदा प्रिय मालूम होते हैं और जो हज़ार आँखों से दूसरों का दोष देखा करते हैं।

उदासीन-अरि-मीत-हित, सुनत जरहिं खल-रीति।
जानि पानि जुग जोरि जनु, बिनती करउँ सप्रीति॥
मैं अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउब भोरा॥
वायस पालिय अति अनुरागा। होहिं निरामिष कबहुँ कि कागा॥
बन्दउँ सन्त असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दारुन दुख देहीं॥
उपजहिं एक संग जगमाहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू॥
भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि व्याधू॥
गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई॥

यह दुष्टों की रीति है कि वे उदासीन, शत्रु और मित्र सभी का हित देखकर जल उठते हैं। यह जानकर, दोनों हाथ जोड़कर प्रीतिपूर्वक मैं उनकी बिनती करता हूँ।

मैंने तो अपनी ओर से विनती कर ली; पर, वे अपनी ओर से न चूकेंगे। कौवा यदि बड़े प्यार से भी पाला जाय तो क्या वह माँस खाना छोड़ देगा? सन्त और असज्जन दोनों ही के चरणों की मैं बन्दना करता हूँ। ये दोनों ही दुखप्रद हैं पर इनमें कुछ भेद है, जिसका वर्णन मैं करता हूँ। एक तो विछुड़ते हुए प्राण ले लेते हैं—अर्थात् उनके छूट जाने पर प्राणान्तक पीड़ा होती है; और दूसरे मिल कर दारुण दुख देते हैं। दोनों संसार में एक साथ ही उत्पन्न होते हैं, किन्तु गुणों में कमल और जोंक के समान अलग अलग हो जाते हैं। सन्त और असजन दोनों अमृत और शराब के समान हैं, जिन्हें उत्पन्न करनेवाला एक ही अगाध संसार समुद्र है। भले और बुरे अपनी ही करनी से सुयश और अपयश की सम्पत्ति पाते हैं। साधु लोग, अमृत, चन्द्रमा और गंगा जी के समान हैं, तथा असाधु विप, अग्नि और कर्मनाशा नदी के समान हैं। गुण और अवगुण को सभी जानते हैं; लेकिन जो जिसे अच्छा लगता है, वही उसके लिये भला है।

भलो भलाई पै लहइ , लहइ निचाई नीच ।
सुधा सराहिय अमरता , गरल सराहिय मीच ॥

(वासस्थान निर्देश)

पूछेहु मोहिं कि रहउँ कहँ , मैं पूछत सकुचाउँ ।
जहँ न होहु तहँ देहुँ कहि , तुम्हहिं देखावउँ ठाउँ ॥

सुनि मुनि वचन प्रेमरस साने । सकुचि राम मनमहँ मुसुकाने ॥
वाल्मीकि हँसि कहहिं बहोरी । बानी मधुर अमिय रस बोरी ॥
सुनहु राम अब कहहुँ निकेता । जहाँ वसहु सिय लषन समेता ॥
जिन्हके स्रवन समुद्र समाना । कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहिं निरन्तर होहिं न पूरे । तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गृहरूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राषे । रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥
निदरहिं सरित सिन्धु सरभारी । रूप बिन्दु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्हके हृदय सदन सुखदायक । बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ॥

भलों को भलाई अच्छी मालूम पड़ती है और नीचों को बुराई । अमृत की प्रशंसा अमर कर देने की है और विष की मार डालने की ।

सकुचाउँ = संकुचित होता, डरता हूँ । ठाउँ = स्थान, जगह । बहोरी = पुनः । अमिय = अमृत । बोरी = डुबा कर । निकेता = घर, रहने की जगह । स्रवन = कान । सुभग = सुन्दर, पवित्र । सरि = नदी । नाना = अनेक ।

निरन्तर = हमेशा । तुम्हकहुँ = तुम्हारे लिए । रूरे = सुन्दर । चातक = एक पक्षी, जिसकी प्यास स्वाती के बूँद के सिवा और किसी जल से नहीं मिटती और स्वाती के जल की आशा में जो साल भर तक मुँह बाये बैठा रहता है । दरस-जलधर = दर्शनरूपी मेघ । निदरहिं = निरादर करते, तिरस्कार करते हैं । सरित = नदी । सिन्धु = समुद्र । सर = तालाब । रूप-बिन्दुजल = तुम्हारे रूप के एक बूँद जल से । सदन = घर । सह = सहित ।

जस तुम्हार मानस विमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुनगन चुनइ, राम बसहु मन तासु॥
प्रभुप्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नितनासा॥
तुम्हहिं निवेदित भोजनु करहीं। प्रभु प्रसाद पटु भूषन धरहीं॥
सीसनवहिँ सुर-गुरु-द्विजदेखी। प्रीतिसहितकरिविनयविसेखी॥
कर नित करहिं रामपद पूजा। राम भरोस हृदय नहिँ दूजा॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मनमाहीं॥
मंत्रराजु नित जपहिँ तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहिं सहित परिवारा॥
तरपन होम करहिं विधि नाना। विप्र जेंवाइ देहिं बहु दाना॥
तुम्हतें अधिक गुरुहिं जिय जानी। सकल भायसेवहिं सनमानी॥
सबुकर माँगहिँ एकु फलु, रामचरन रति होउ।
तिन्ह के मन मन्दिर बसहु, सिय रघुनन्दन दोउ॥
काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥

जस = यश, कीर्ति। मानस = मानसरोवर। विमल = पवित्र। जीहा = जिह्वा, जीभ। जासु = जिसकी। सुचि = शुद्ध। सुभग = सुन्दर। सुवासा = सुगन्धित। लहइ = ग्रहण करना, सूँघना। नासा = नाक। निवेदितु = निवेदन किया हुआ, पहले तुम्हें खिलाया हुआ। पटु-भूषण = कपड़े और गहने। सीस = सिर। नवहिं = नवाते, झुकाते हैं। सुर = देवता। गुरु = आचार्य। द्विज = ब्राह्मण। विसेखी = विशेष, अधिक। कर = हाथ। रामपद = रामचन्द्र के पैरों की। भरोस = भरोसा, आशा। दूजा = दूसरा। राम-तीरथ = रामचन्द्र जी का तीर्थ, अयोध्या। माहीं = मध्य में। मंत्रराजु = मंत्रों का राजा, रामनाम का मंत्र।

तरपन = तर्पण। होम = हवन। विधिनाना = अनेक प्रकार से। जेंवाइ = भोजन कराके। जिय = हृदय में। भाय = प्रकार, तरह। सनमानी = सम्मान, आदरपूर्वक। सबु कर = सभी का। दोउ = दोनों। काम = विषय वासना। कोह = क्रोध। लोभ = आकांक्षा। मोह = ममता, माया

जिन्हके कपट दंभ नहिं माया । तिन्हके हृदय बसहु रघुराया ॥
सबके प्रिय सबके हितकारी । दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छाँड़ि गति दूसर नाहीं । राम बसहु तिन्हके मनमाहीं ॥
जननी सम जानहिं परनारी । धनु पराव विषतें विष भारी ॥
जे हर्षहिं पर सम्पति देखी । दुखी होंहिं पर विपति विसेखी ॥
जिन्हहिं राम तुम्ह प्रान पियारे । तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे ।

स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम तात ।
मन मन्दिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥

अवगुन तजि सब के गुन गहहीं । विप्र-धेनुहित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्हकहँ जग लीका । घर तुम्हार तिन्हकर मनु नीका ॥
गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा । जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही । तेहि उर बसहु सहित वैदेही ॥
जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई । प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
सब तजि रहहिं तुम्हहिं उरलाई । तेहिके हृदय रहहु रघुराई ॥
सरगु नरकु अपबरगु समाना । जहँ जहँ देख धरे धनुबाना ॥
करम-बचन-मन राउर चेरा । राम करहु तेहि के उर डेरा ॥

छोभ = क्षोभ, दुःख । राग = अनुराग, प्रेम । द्रोह = द्रोह, शत्रुता ।

दम्भ = अभिमान । माया = पाखण्ड । सरिस = समान । गारी = गाली । गति = उपाय, अवलम्ब । धनु = धन, सम्पत्ति । पराव = पराया, दूसरे का । विसेखी = विशेष, अधिक । सखा = मित्र ।

अवगुन = बुराई । गहहीं = ग्रहण करते हैं । सहहीं = सहन करते, भोगते हैं । जिन्हकर = जिनके लिए । लीका = रेखा, चिन्ह । मनु = मन, हृदय । भरोसा = आसरा । जेही = जिसे । अपवर्ग = मुक्ति । राउर = आपका । चेरा = भक्त, दास । डेरा = वास ।

जाहि न चाहिय कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेह।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज-गेह॥

(अनुसूया की सीख)

मातु-पिता भ्राता हितकारी। मितप्रद सब सुनु राजकुमारी॥
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेव न तेही॥
धीरज धरम मित्र अरु नारी। आपद्‌काल परखियहि चारी॥
वृद्ध रोगबस जड़ धन हीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पति कर किय अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धरम एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा॥
जग पतिव्रता चारि विधि अहहीं। वेद पुरान संत सब कहहीं॥
उत्तम मध्यम नीच लघु, सकल कहउँ समुझाइ।
आगे सुनहिं ते भव तरहिँ, सुनहु सीय चित लाइ॥
उत्तम के अस बस मन माहीं। सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥
मध्यम परपति देखइ कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धरम विचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट तिय स्रुति अस कहई।
बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई॥

सहज = स्वाभाविक। निज = अपना। गेह = घर।

मितप्रद = थोड़ा देनेवाला। अमित = जिसका परिमाण न हो, बहुत अधिक। दानि = दान देने वाला। सेव = सेवा। तेही = उसे। परखियहि = परखी जाती, परीक्षा की जाती है। जड़ = मूर्ख, बुद्धू। दीन = दरिद्र, गरीब। किय = करने से। काय = शरीर। अहहीं = हैं।

लघु = हलकी, निकृष्ट। भव = संसार। अस = ऐसा। बस = बसता है। आन = दूसरा। परपति = दूसरे का पति। विचारि = सोचकर, जानकर। अस = ऐसा। कहई = कहती है। बिनु अवसर = मौक़ा न मिलने के कारण। भयते = डर से। रह = रहती है। जोई = जो। सोई = वही।

पतिवंचक परपति रति करई। रौरव नरक कलप-सत परई॥
छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समुझ तेहि सम को खोटी॥
बिनु स्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धरम छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। विधवा होइ पाइ तरुनाई॥

सहज अपावनि नारि, पति सेवक सुभ गति लहइ।
जसु गावति स्रुति चारि, अजहु तुलसिका हरिहि प्रिय॥
सुनु सीता तव नाम, सुमिरि नारि पतिव्रत करहि।
तोहि प्रान प्रिय राम, कहेउँ कथा संसार हित॥

(सीता की अग्नि परीक्षा)

प्रभु के बचन सीस धरि सीता। बोली मन-क्रम बचन-पुनीता॥
लछिमन होहु धरम कै नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह बेगी॥

वंचक = ठगनेवाली। परपति = दूसरे पति से। रति = प्रेम। कलप-सत = सौ कल्प; ब्रह्मा के एक दिन को कल्प कहते हैं। छन-सुख = क्षणिक सुख। जनम-सत-कोटी = सौ करोड़ जन्मों तक। खोटी = नीच। श्रम = परिश्रम, मेहनत। परम गति = वैकुण्ठ। पतिप्रतिकूल = पति से विमुख होकर। तरुनाई = यौवन। अपावनि = अपवित्र। तुलसिका = तुलसीदल। हरिहिँ = विष्णु को। तव = तुम्हारा। सुमिरि = स्मरण करके।

सीसधरि = विनीत होकर, मानकर। मन क्रम वचन पुनीता = मन, कर्म और वचन से पवित्र। नेगी = पौनी, नेग कहते हैं उस दक्षिणा को जो विवाह आदि उत्सवों में नाई, ब्राह्मण आदि शुभ कर्म करानेवालों को दी जाती है; ये ही लोग नेगी कहे जाते हैं। पावक = अग्नि। बेगी = शीघ्र ही।

सुनि लछिमन सीता कै बानी । बिरह-बिबेक-धरम-जुति-सानी ॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ । प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ॥
देखि राम रुख लछिमन धाये । पावक प्रगटि काठ बहु लाये ॥
पावक प्रबल देखि बैदेही । हृदय हरष कछु भय नहिं तेही ॥
जौ मन वचक्रम मम उरमाहीं । तजि रघुबीर आन गति नाहीं ॥
तौ कृसानु सब कै गति जाना । मो कहँ होहु श्रिखंड समाना ॥

श्रीखंड सम पावक प्रबेस कियो सुमिरि प्रभु मैथिली ।
जय कोसलेस महेस बंदित-चरनरति अति निर्मली ।
प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचण्ड पावक महँ जरे ।
प्रभु चरित काहु न लखे सुरनभ सिद्ध मुनि देखहिं खरे ॥

कै = के । बानी = वचन । जुति = युक्ति । सानी = भरी हुई । सजल = जलयुक्त, भरी हुई । जोरि कर दोऊ = दोनो हाथ जोड़कर । सन = से । ओऊ = वे भी । राम रुख = रामचन्द्रजी का रुख, उनकी इच्छा । धाये = दौड़े । प्रकटि = प्रकट करने, जलाने के लिए । काठ = लकड़ी । प्रबल = धधकती हुई । हरष = प्रसन्नता । तेही = उसे । मम ....माहीं = मेरे हृदय में । तजिरघुबीर = रामचन्द्र के अतिरिक्त, उनके सिवा । आन = दूसरा । गति = उपाय, रास्ता । कृसानु = अग्नि । कै = की । जाना = जानते हो । श्रिखंड = चन्दन ।

मैथिली जानकी ने रामचन्द्र का स्मरण करके चन्दन के समान शीतल अग्नि में प्रवेश किया । उन्होंने कोशल देश के स्वामी की जयजयकार की, जिनके चरणों की वन्दना शिवजी करते हैं और जिनसे किया हुआ प्रेम मनुष्य को निर्मल बना देता है । उस धधकती हुई आग में सीताजी की छाया और लौकिक कलंक जल गये । आकाश में देवता सिद्ध और मुनिगण खड़े देख रहे थे, लेकिन प्रभु रामचन्द्र की यह लीला कोई न देख सका ।

धरि रूप पावक पानिगहि श्रीसत्य स्रुति जग विदित जो।
जिमि छीरसागर इंदिरा रामहिं समर्पी आनि सो॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नव-नील-नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की कली॥

(बरवै)

का घूँघट मुख मूँदहु नवला नारि ?
चाँद सरग पर सोहत यहि अनुहारि॥
गरब करहु रघुनंदन जनि मन माँह।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाँह॥
उठी सखी हँस मिस करि कहि मृदु बैन।
सिय रघुबीर के भए उनीदे नैन॥

बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाइ।
ये अँखियाँ दोउ बैरिनि देहिं बुझाइ॥

जो श्रुति और लोक में प्रसिद्ध हैं, जो सचमुच ही लक्ष्मी हैं, उन सीताजी का हाथ पकड़ कर—शरीरधारण करके—अग्निदेव ने रामचन्द्रजी को सौंप दिया; जैसे, क्षीरसागर ने विष्णु को लक्ष्मी समर्पित की थी। वह रामचन्द्र के बाएँ भाग में अत्यन्त सुन्दर शोभित हो रही हैं, मानो, नवीन नील कमल के समीप स्वर्ण की कमल-कली शोभित हो रही हो।

नवला = नवेली; युवती। सरग = स्वर्ग; आकाश। यहि = इसी के। अनुहारि = अनुरूप; समान। गरब = गर्व; घमण्ड। मन माँह = मन में। मूरति = प्रतिबिम्ब; शकल। छाँह = छाया में। मिस = वहाना। बैन = बानी; बात। उनींदे = निद्राहीन; जिनमें नींद न हो।

अधिकाइ = अधिक हो जाती है।

डहकु न है उजियरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागु मोहिं बिन राम॥
अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुदरी कंकन होइ॥
राम-सुजस कर चहुँ जुग होत प्रचार।
असुरन कहँ लखि लागत जग अँधियार॥

(पार्वती मंगल)

एक समय हिमवान भवन नारद गए।
गिरिवर मैना मुदित मुनिहिं पूजत भए॥
उमहिं बोलि ऋषि-पगन मातु मेलति भइ।
मुनिमन कीन्ह प्रनाम, बचन आसिष दइ॥
कुँवरि लागि पितु काँध ठाढि भइ सोहइ।

डहकु = तड़पना; जलना। उजियरिया = उजाली। निसि = रात्रि। घाम = धूप। जरत = जल रहा है। अस = ऐसा। कनगुरिया = कनिष्ठा, सब से छोटी उँगली। मुँदरी = अँगूठी। कंकन = हाथ का कड़ा। अभिप्राय यह है कि इतनी दुर्बल हो गयी हूँ कि छोटी उँगली की अँगूठी हाथों का कड़ा बन रही है। लखि = देखकर।

हिमवान = हिमालय पर्वत। गिरिवर-मैना = हिमालय और उनकी स्त्री मैना। मुदित = प्रसन्न होकर। मुनिहिं = मुनि को। उमहिं = उमा, पार्वती। बोलि = बुलाकर। ऋषिपगन = नारद जी के पैरों पर। मेलन = मिलाना। पगन मेलत भई = पैरों पर गिराया। मुनि......दइ = मुनि ने मन ही मन उसे प्रणाम किया और बचनों से आशीष दिया। कुँवरि = पार्वती। लागि पितु काँध = पिता के कन्धे से लगकर। ठाढ़ भई = खड़ी हुई। सोहइ = शोभित होती है।

रूप न जाइ बखानि, जान जोइ जोहइ ॥
अति सनेह सति भाय पाँय परि पुनि पुनि।
कह मैना मृदु बचन "सुनिय बिनती, मुनि !
तुम तिभुवन तिहुँ काल बिचार बिसारद।
पारवती-अनुरूप कहिय बर, नारद" ॥
मुनि कह "चौदह भुवन फिरउँ जग जहँ जहँ।
गिरिवर सुनिय सरहना राउरि तह तहँ ॥
भूरि भाग तुम सरिस कतहुँ कोउ नाहिन।
कछु न अगम; सब सुगम, भयो बिधि दाहिन ॥

(जानकी मंगल)

गिरि तरु बेलि सरित सर बिपुल बिलोकहिं।
धावहिं बाल सुभाय बिहँग मृग रोकहिं ॥
सकुचहिं मुनिहि सभीत बहुरि फिरि आवहिं।

बखानि = वर्णन किया। जोहइ = ढूँढ़ता है। सतिभाय = सत्यभाव से। परि = पड़कर। पुनि पुनि = बार बार। कह = कहती है। तिभुवन = तीनों लोक, स्वर्ग-मर्त्य-पाताल। तिहुँकाल = तीनों काल, भूत, वर्तमान और भविष्य। बिसारद = जानने वाले; ज्ञाता। अनुरूप = योग्य; लायक़। बर = दूल्हा। कह = कहते हैं। सरहना = प्रशंसा; तारीफ़। राउरि = आपकी। भूरि भाग = बड़े भाग्यवाला। सरिस = समान। कतहुँ = कहीं। नाहिन = नहीं है। अगम = न जानने योग्य। सुगम = आसानी से जान लेने योग्य। बिधि = विधाता, ब्रह्मा। दाहिन = अनुकूल; पक्ष में।

गिरि = पर्वत। तरु = वृक्ष। बेलि = लता। सरित = नदी। सर = तालाब। बिपुल = बहुत से। बिलोकहिँ = देखते हैं। धावहिं = दौड़ते हैं। सुभाय = स्वभाव से ही, अकारण। बिहँग = पक्षी। बहुरि = पुनः, फिर। फिरि आवहिँ = लौट आते हैं।

तोरि फूलफल किसलय माल बनावहिं ॥
देखि विनोद प्रमोद प्रेम कौशिक उर।
करत जाहिं घन छाँह, सुमन बरषहिं सुर ॥
करि करि विनय कछुक दिन राखि बरातिन्ह।
जनक कीन्ह पहुनई अगनित भाँतिन्ह ॥
प्रात बरात चलिहि सुनि भूपति भामिनि।
परि न बिरहबस नींद बीति गइ जामिनि ॥
खरभर नगर, नारि नर बिधिहि मनावहिं।
बार बार ससुरारि राम जेहि आवहिं ॥
सकल चलन के साज जनक साजत भए।
भाइन सहित राम तब भूप भवन गए ॥
सासु उतारि आरती करहिं निछावरि।
निरखि निरखि हिय हरषहिं मूरति साँवरि ॥
माँगेउ बिदा राम तब, सुनि करुना भरी।
परिहरि सकुच सप्रेम पुलकि पायन्ह परी ॥

तोरि = तोड़ कर । किसलय = कोमल पत्ते । कौसिक = वशिष्ट । घन = बादल । छाँह = छाया । बरषहिं = बरसते हैं । सुर = देवता ।

कछुक दिन = कुछ दिनों तक । बरातिन्ह = बराती, बरयात्री, जो लोग बरपक्ष से बरातों में शामिल होते हैं, उन्हें बरयात्री कहते हैं । पहुनई = आतिथ्य; (पाहुन = अतिथि, आया हुआ) । अगनित भाँतिन्ह = अनेक प्रकार से । चलिहि = चलेगी, प्रस्थान करेगी । भूपति भामिनि = जनक की स्त्री, सुनैना । जामिनि = रात्रि । खरभर = खलबली हलचल । जेहि = जिससे । चलन के साज = प्रस्थान करने की तैयारी । साजत भए = की । निछावरि = रुपये-पैसे आदि उतारना, न्यौछावर करना । मूरति = मूर्ति, शरीर । साँवरि = साँवली । परिहरि सकुच = संकोच छोड़ कर । पायन्ह = पैरों पर ।

सीय सहित सब सुता सौंपि कर जोरहिं।
बार बार रघुनाथहिं निरखि निहोरहिं॥
तात तजिय जनि छोह मया राखबि मन।
अनुचर जानब राउ सहित पुर परिजन॥

(गीतावली)

जबहिं रघुपति संग सीय चली।
विकल वियोग लोग पुर तिय कहैं अति अन्याउ अली॥
कोउ कहै मनिगन तजत काँच लगि करत न भूप भली।
कोउ कहै कुल कुबेलि कैकेई दुख विष फलनि फली॥
एक कहैं बन जोग जानकी विधि बड़ विषम बली।
तुलसी कुलिसहि की कठोरता तेहि दिन दलकि दली॥

निहोरहिं = बिनती करती हैं। तजिय जनि = मत छोड़ना। छोह = प्रेम, ममता। मया = माया। अनुचर = सेवक, दास। राउ सहित = राजा के साथ। पुर परिजन = नगर के लोगों को।

अन्याउ = अन्याय। अली = सखी। लगि = के लिए। कुबेलि = बुरी लता। फली = उत्पन्न किया। बली = बलवान। कुलिस = बज्र. दलकि = ज़ोर से, बेग से। दली = नष्ट कर दिया।

सूरदास

सोभित कर नवनीत लिये।
घुटुरुवन चलत रेनु तन मंडित मुख में लेप किये॥
चारु कपोल लोल लोचन छवि गोरोचन को तिलक दिये।
लर लटकन मानो मत्त मधुप गन माधुरी मधुर पिये॥
कठुला कंठ बज्र केहरि नख राजत है सखि रुचिर हिये।
धन्य 'सूर' एकौ पल यह सुख कहा भयो सत कल्प जिये॥

मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी।
कितीबार मोहिं दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।
काढत गुहत नहावत ओछत नागिन सी भ्वैं लोटी॥

नवनीत = माखन। घुटुरुवन = घुटनों से। रेनु = धूल। मंडित = भरा हुआ। लेप किये = लगाए हुए। चारु = सुन्दर। लोल = चंचल। गौरोचन = गोरोचन, एक सुगन्धित द्रव्य विशेष। लर = गले की माला। मधुप = भौंरा। कठुला = जो बच्चों के गले में पहनाया जाता है। केहरि नख = बघनखा। राजत = विराजमान है। रुचिर = सुन्दर। हिये = हृदय पर। सतकल्प = सौ कल्प, एक कल्प ब्रह्मा के एक दिन का होता है। कितीबार = कितनी देर। अजहूँ = अभी भी। बल = बलराम, कृष्ण के बड़े भाई। काढ़त = कंघी करना। ओछत = कपड़े से पोंछना। भ्वैं = ज़मीन में।

काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
'सूर' श्याम चिरजीवो दोऊ भैया हरि हलधर की जोटी॥

——

खेलन अब मेरी जात बलैया।
जबहिं मोहिं देखत लरिकन सँग तबहिं खिझत बल भैया॥
मोसों कहत तात वसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दे वसुदेव को करि करि जतन बटैया॥
अब बाबा कहि कहत नंद को यसुमति को कहै मया।
ऐसेहि कहि सब मोहिं खिझावत तब उठि चलो खिसैया॥
पाछे नन्द सुनत है ठाढ़े हँसत हँसत उर लैया।
सूर नन्द बलिरामहिं घिरयो सुनि मन हरख कन्हैया॥

——

मैया मैं न चरैहों गाइ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसों मेरे पाइँ पिराइ।
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहि अपनी सौंह दिवाइ॥
मैं पठवति अपने लरिका कूँ आवै मन बहराइ।
सूर श्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिंगाइ॥

काचो = कच्चा, बिना गर्म किया हुआ। पचि पचि = ज़िद से, ज़बरदस्ती। हरि हलधर = कृष्ण और बलराम। जोटी = जोड़ी।

खिझत = चिढ़ाते हैं। तात = बेटा, पुत्र। कछु दे = कुछ देकर। खिसैया = नाराज़ होकर। उरलैया = हृदय से लगाकर। घिरयो = डाँटा, बुरा भला कहा।

सिगरे = सभी। घिरावत = घेरवाते हैं, रोकने को कहते हैं। पिराइ = दर्द करता है। पत्याहि = विस्वास करो। सौंह = सौगन्ध, शपथ। पठवति = भेजती हूँ। बहराइ = बहला। मारत ताहि रिंगाइ = चिढ़ा मारते, तंग कर डालते हैं।

ऊधो योग योग हम नाहीं ।
अबला सार ज्ञान कहा जानै कैसे ध्यान धराहीं ॥
ते ये मूँदन नैन कहत हैं हरि मूरत जा माहीं ।
ऐसी कथा कपट की मधुकर हमतें सुनी न जाहीं ॥
स्रवन चारि अरु जटा बँधावहु ये दुख कौन समाहीं ।
चन्दन तजि अँग भस्म बतावत विरह अनल अति दाही ॥
योगी भरमत जेहि लगि भूले सो तो है अपुमाहीं ।
सूरदास ते न्यारे न पल छिन ज्यों घट ते परछाहीं ॥

——

मधुकर इतनी कहियहु जाइ ।
अति कृशगात भईं ये तुम बिन परम दुखारी गाइ ॥
जल समूह बरसत दोउ आँखैं हूँकति लीने नाउँ ।
जहाँ जहाँ गोदोहन कीनों सूँघत सोई ठाउँ ॥
परति पछार खाइ छिन ही छिन अति आतुर ह्वै दीन ।
मानहु सूर काढ़ि डारी है बारि मध्य ते मीन ॥

——

योग = लायक । सारज्ञान = तत्वज्ञान । ते = वे । जा माहीं = जिसमें । कपट = छल । मधुकर = भौंरा । स्रवन = कान । समाहीं = बर्दाश्त करे, सहे । तजि = छोड़ कर । अनल = आग । दाही = जलाने वाला । भरमत = भटकते फिरते हैं । जेहि लागि = जिसके लिए । अपुमाहीं = अपने ही में । न्यारे = अलग । घट = वस्तु, शरीर । परछाहीं = छाया, प्रतिबिम्ब ।

कृश = दुर्बल । गात = शरीर । हूँकति = रँभाती, डकरती हैं । लीने = लेने पर । गोदोहन = दूध दुहा है । ठाउँ = जगह । पछार = मूर्च्छित, बेहोश । आतुर = विह्वल । दीन = विवश । काढ़ि डारी है = निकाल लिया है । बारि मध्य ते = पानी में से । मीन = मछली ।

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो।
समदरसी हैं नाम तिहारो चाहे तो पार करो॥
इक नदिया इक नार कहावत मैलेहि नीर भरो।
जब दोनों मिलि एक बरन भए सुरसरि नाम परो॥
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवै कंचन करत खरो॥
यह माया भ्रमजाल कहावै सूरदास सगरो।
अबकी बार मोहि पार उतारो नहिं प्रन जात टरो॥

चित न धरो = मन में न लाओ, ख़याल न करो। समदरसी = समान देखने वाला। नदिया = नदी। नार = नाला। मैलेहि = गन्दा ही। नीर = पानी। बरन = वर्ण, रंग। सुरसरि = गंगा। बधिक = कसाई। पारस = पारस नाम का पत्थर जो धातुओं को स्पर्श करके सोना बना देता है। चितवै = देखता है। कंचन = सोना। खरो = असली, सच्चा। सगरो = सारा। प्रन = प्रतिज्ञा। टरो = टली।

कबीर

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिल, तो भी सस्ता जान॥
दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय॥
कबिरा गर्व न कीजिए, काल गहे कर केस।
ना जानौं कित मारिहै, क्या घर क्या परदेस॥
हाड़ जरे ज्यों लाकड़ी, केस जरे ज्यों घास।
सब जग जरता देखि कर, भये कबीर उदास॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिप जायगी, ज्यों तारा परभात॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़िया चुग गइ खेत॥
माटी कहै कुम्हार को, तू क्या रूँदै मोहिं।
इक दिन ऐसा होयगा, मैं रूँदूँगी तोहिं॥
या दुनिया में आइ के, छाड़ि देइ तू ऐंठ॥
लेना है सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ॥
इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै, तनकी नारी जाहिं॥

बेलरी = लता। गर्व = घमंड। गहे = पकड़े हुए है। कर = हाथ।
स = बाल। केरा = का। परभात = सबेरा। हेत = प्रेम, हितैषिता।
दै = मसलना, रौंदना। ऐंठ = गुमान, गर्व। पैंठ = बाज़ार। नारी =
ी। नारी = नाड़ी, धड़कन।

नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब्ब।
हरिअर हरिअर रूखड़े, ईंधन हो गये सब्ब॥
माली आवत देखि कै, कलियाँ करी पुकार।
फूली फूली चुनि लिये, कालि हमारी बार॥
आगि लगी आकाश में, झरि झरि परै अँगार।
कबिरा जरि कंचन भया, काँच भया संसार॥
सीस उतारै भुइँ धरै, तापर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट विकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ ले जाय॥
जब मैं था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं।
प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं॥
प्रेम छिपाया ना छिपे, जा घट परघट होय।
जो पै मुख बोलै नहीं, नयन देत हैं रोय॥
नयनों की करि कोठरी, पुतली पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय॥
जाति न पूछै साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥
जिन ढूँढा तिन पाइयाँ, गहरे पानी पैठ॥
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारे बैठ।
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजो आपना, मुझ सा बुरा न कोय॥

बहुरि = पुनः, फिर। हरिअर = हरे। रूखड़े = वृक्ष। ईंधन = जलावन, लकड़ी। कालि = कल। भुइँ = ज़मीन। बाड़ी = घर। हाट = बाज़ार। परजा = प्रजा, अधीन। घट = शरीर। परगट = प्रगट, प्रकाशित। पाइयाँ = पाया। पैठ = घुसकर। बौरा = पागल।

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पुजौं पहार।
तातें ये चाकी भली, पीस खाय संसार॥
काँकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय॥
साँझ पड़े दिन बीतवै, चकवी दीन्हा रोय।
चल चकवा वा देस को, जहाँ रैन ना होय॥

शब्दावली

मन फूला फूला फिरे जक्त में कैसा नाता रे॥ टेक॥
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै बिर मेरा।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा॥
पेट पकरि के माता रोवै बाँह पकरि के भाई।
लपटि झपटि के तिरिया रोवै हंस अकेला जाई॥
जब लगि माता जीवै रोवै बहिन रोवै दस मासा।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर बासा॥
चार गजी चरगजी मँगाया चढ़ा काठ की घोड़ी।
चारो कोने आग लगाया फूँक दियो जस होरी॥

मिलिया = मिला। पाहन = पत्थर। पहार = पहाड़, पर्वत। चाकी = चकरी, जाँता। चुनाय = बनवा। बाँग दे = अजान देना। खुदाय = खुदा, ईश्वर। मुआ = मर गया। बीतवै = बीत जाता है।

जक्त = जगत, दुनियाँ। बिर = भाई। भुजा = हाथ। तिरिया = स्त्री। हंस = प्राण। मासा = महीना। बासा = निवास। चरगजी = कपड़ा। काठ की घोड़ी = चिता।

हाड़ जरै जस लाह कड़ो को केस जरै जस घासा।
सोना ऐसी काया जरि गई कोई न आयो पासा ॥
घर की तिरिया देखन लागी ढूँढ़ फिरी चहुँ देसा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो छाड़ो जग की आसा ॥

रहना नहि देस बिराना है।
यह संसार कागद की पुड़िया बूँद पड़े घुल जाना है।
यह संसार काँट की बाड़ी उलझ पुलझ मर जाना है ॥
यह संसार झाड़ औ झाँखर आग लगै बर जाना है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो सतगुरु नाम ठिकाना है ॥

बिराना = दूसरे का। कागद = कागज़। काँट = कंटक। बाड़ी = घर। उलझ पुलझ = उलझन में पड़कर। बर = जलना। सतगुरु = सच्चा गुरु। ठिकाना = ध्येय, लक्ष्य, अंतिम स्थान।

रहीम

ए रहीम दर दर फिरहिँ, माँगि मधुकरी खाहिँ।
यारो यारो छोड़िए, वे रहीम अब नाहिँ॥
कहि रहीम इक दीप तें, प्रकट सबै दुति होय।
तन सनेह कैसे दुरै, दृग-दीपक जरु दोय॥
कहु रहीम कैसे निभै, बेर केर को संग।
वे डोलत रस आपने, उनके फाटत अँग॥
कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
काकी प्रभुता नहिँ घटी, पर घर गए रहीम॥
खीरा सिर तें काटियत, मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुए मुखन को, चहियत इहै सजाय॥
चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेस।
जापर बिपदा परत है, सो आवत एहि देस॥
जैसी परै सो सहि रहे, कहि रहीम यहि देह।
धरती ही पर परत है, सीत, घाम अरु मेह॥
जो बड़ेन को लघु कहैं, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिँ॥

दर दर = दरवाज़े-दरवाज़े। मधुकरी = भीख। दीप = दीपक, दिया। दुति = द्युति, प्रकाश। सनेह = स्नेह, तेल। दुरै = दूर हो, अलग हो। दृग......दोय—आँखरूपी दो दिये जल रहे हैं। केर = केला। डोलत = झूम रहे हैं। जलधि = समुद्र। धीम = धीमा अप्रसिद्ध। प्रभुता = महिमा। पर = दूसरे के। लोन = निमक। करुए = कड़ुए, तीखे। सज़ाय = सज़ा, दण्ड। रमि = निवास कर रहे। मेह = वर्षा। लघु = छोटा।

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥
जौ रहीम मन हाथ है, तो तन कहुँ किन जाहि।
जल में जो छाया परे, काया भींजति नाहिं॥
थोरो किए बड़ेन की, बड़ी बड़ाई होय।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरिधर कहत न कोय॥
दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूरपर, जब घर लागत आगि॥
धूरि धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज ऋषिपत्नी तरी, सोइ ढूँढ़त गजराज॥
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि॥
रहिमन ब्याह बिआधि है, सकहु तो जाहु बचाय।
पायन बेड़ी परत है, ढोल बजाय बजाय॥
प्रीतम छबि ननन बसी, पर छबि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि, आप पथिक फिरि जाय॥
लहरत लहर लहरिया, लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार॥

भुजङ्ग = साँप। दुरदिन = बुरे दिन। दुरथल = बुरी जगह। जैयत = जाते हैं। घूर = कूड़ाखाना। धूरि = धूल। सीस = सिर। रज = धूल। ऋषिपत्नी — अहल्या। गजराज = हाथी।

डार = छोड़ देना, अलग कर देना। कहा = क्या। बिआधि = व्याधि, रोग। जाहु बचाय = बचा जाओ, अलग हो जाओ। पायँन... बजाय = ढोल बजा बजाकर पैरों में बेड़ी डाली जाती है। पर = दूसरे की। सराय = धर्मशाला। फिरिजाय = लौट जाता है। लहरत = हिल रही है। लहरिया = लहरें। बहार = आनन्द। जरी = जड़ी हुई। किन-रिया = किनारा, पाड़। बिथुरे = बिखरे हुए, फैले हुए।

बालम अस मन मिलएउँ, जस पय पानि।
हंसिनि भई सवतिया, लइ बिलगानि॥
ढीलि आँख जल अंचवत, तरुनि सुभाय।
धरि खसकाइ घइलना, मुरि मुसुकाय॥
दीन चहैं करतार जिन्हें सुख सो तो रहीम टरे नहिं टारे।
उद्यम पौरुष कीने बिना धन आवत आपुहि हाथ पसारे॥
दैव हँसे अपनी अपना बिधि के परपंच न जात बिचारे
बेटा भयो बसुदेव के धाम औ दुन्दुभि बाजत नन्द के द्वारे॥

बालम = प्रियतम। मिलएउँ = मिलाया है। पय = दूध। बिलगानि = अलग हो गई। ढीलि = छोड़कर, देखकर। अँचवत = हाथ धोती है। सुभाय = स्वभाव से, सहज में ही। घइलना = गगरी। मुरि = फिर कर, लौटकर।

दीन = देना। टारे = टालने से। उद्यम = उपाय। पौरुष = पुरुषार्थ, कामधाम। दैव = भाग्य। अपनी अपना = आपस में। परपंच = प्रपंच, माया। नहिं जात बिचारे = समझ में नहीं आते। बेटा भये = पुत्र उत्पन्न हुआ। धाम = घर। दुंदुभि = बधाई के बाजे।

गिरिधर

साईं बेटा बाप के, बिगरे भयो अकाज।
हरिनाकस्यप कंस को, गयउ दुहुँन को राज॥
गयउ दुहुँन को राज, बाप बेटा सों बिगरी।
दुस्मन दावागीर हँसै, महिमण्डल नगरी॥
कह गिरिधर कविराय, युगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर, नफ़ा कहु कौने पाई॥

साईं ऐसे पुत्र से, बाँझ रहे वरु नारि।
बिगरी बेटे बाप से, जाय रहे ससुरारि॥
जाय रहे ससुरारि, नारि के नाम बिकाने।
कुल के धर्म नसायँ और परिवार नसाने॥
कह गिरिधर कविराय मातु झंखै वहि ठाईं।
असि पुत्रनि नहिं होय, बाँझ रहतिउँ वरु साईं॥

सोना लादन पिय गये, सूना करि गये देश।
सोना मिले न पिय मिले, रूपा ह्वै गये केश॥
रूपा ह्वै गये केश, रोय रँग रूप गँवावा।
सेजन को बिसराम, पिया बिनु कबहुँ न पावा॥
कह गिरिधर कविराय, लोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आव, कहा करिहौं लै सोना॥

बिगरे = अनबन, लड़ाई। अकाज = बुरा। दावागीर = दावा करने, हक़ बतलाने वाला। बाँझ = बन्ध्या, पुत्रहीना। झंखे = पछताना, भाग्य के नाम रोना। असि = ऐसे। रहतिउँ = रहती। रूपा = चाँदी, सफेद। गँवावा = नष्ट कर दिया। बिसराम = विश्राम, सुख। लोन = निमक। अलोना = स्वादहीन।

दौलत पाय न कीजिए, सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारि को, ठाउँ न रहत निदान॥
ठाउँ न रहत निदान, जियत जग में यश लीजै।
मीठे बचन सुनाय, विनय सब ही की कीजै॥
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निशिदिन चारि, रहत सब ही के दौलत॥

गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय॥
शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को एक रंग, काग सब भये अपावन॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुनके॥

साईं सब संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ में, तब लग ताको यार॥
तब लग ताको यार, यार सँग ही सँग डोलैं।
पैसा रहा न पास, यार मुखसे नहिं बोलैं॥
कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोई साईं॥

साईं घोड़े आछतहिँ, गदहन पायो राज।
कौआ लीजै हाथ में, दूरि कीजिए बाज॥
दूरि कीजिए बाज, राज पुनि ऐसो आयो।
सिंह कीजिए कैद, स्यार गजराज चढ़ायो॥

निदान = अन्त में। तौलत = वज़न करता है। पाहुन = अतिथि, अभ्यागत। अपावन = अपवित्र। यहिलेखा = इसी के समान। बेगरजी = बिना मतलब। आछतहिं = रहते ही। गजराज = हाथी।

कह गिरिधर कविराय, जहाँ यह बूझि बधाई।
तहाँ न कीजै भोर, साँझ उठि चलिये साईं॥

साईं अवसर के परे, को न सहै दुःख द्वन्द।
जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचन्द॥
वै राजा हरिचन्द, करैं मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी वेष, फिरे अर्जुन बलधारी॥
कह गिरिधर कविराय, तपै वह भीम रसोई।
को न करै घटि काम, परे अवसर के साईं॥

भोर = सबेरा। मरघट = श्मशान। तपै = पकाना। घटिकाम = छे
काम।

वृन्द

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, रस शृङ्गार न सुहात॥
फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय विचारि।
सब को मन हर्षित करै, ज्यों विवाह में गारि॥
अपनी पहुँच विचारि कै, करतब करिये दौर।
तेते पाँव पसारिये, जेती लाँबी सौर॥
विद्याधन उद्यम बिना, कहौ जु पावै कौन।
बिना डुलाये न मिलै, ज्यों पंखा की पौन॥
रहे समीप बड़ेन के, होत बड़ो हित मेल।
सबही जानत बढ़त है, वृक्ष बराबर बेल॥
नयना देत बताय सब, हिय को हेत अहेत।
जैसे निर्मल आरसी, भली बुरी कहि देत॥
अति परिचै ते होत है, अरुचि अनादर भाय।
मलयागिरि की भीलनी, चंदन देति जराय॥
भले बुरे सब एक सौं, जौ लौं बोलत नाहिँ।
जानि परतु हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माहिँ॥
सबै सहायक सबल के, कोउ न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को, दीपहिँ देत बुझाय॥

नीकी = अच्छी। सुहात = अच्छा लगता है। जेती = जितनी। सौर = घर; जगह। पौन = हवा। हेत-अहेत = भलाई बुराई। आरसी = आइना। जौलों = जब तक। जगावत = तेज़ करता; उद्दीप्त करता है।

जे चेतन ते क्यों तजें, ज़ाको जासों मोह।
चुंबक के पीछे लग्यो, फिरत अचेतन लोह॥
जिहि प्रसंग दूषन लगै, तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ॥
उत्तम जनसों मिलत ही, अवगुन सो गुन होय।
घन संग खारो उदधि मिलि, बरसै मीठो तोय॥
करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर परत निसान॥
भली करत लागत बिलम, बिलम न बुरे विचार।
भवन बनावत दिन लगै, ढाहत लगै न बार॥
कुल सपूत जान्यो परै, लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात॥
कछु कहि नीच न छेड़िए, भलो न वाको संग।
पाथर डारै कीच मैं, उछरि बिगारै अङ्ग॥
बुरौ तऊ लागत भलो, भली ठौर पर लीन।
तिय नैननि नीको लगै, काजर जदपि मलीन॥

चेतन = जीवधारी; प्राणी। अचेतन = अशरीरी। प्रसंग = बात; घटना। मदिरा = शराब। कलाली = शराब बेचने वाला। उदधि = समुद्र। तोय = जल। जड़मति = मोटी बुद्धि वाला। सुजान = चतुर। रसरी = रस्सी, डोरी। सिल = पत्थर। निसान = चिह्न। बिलम = विलम्ब, देर। ढाहत = गिराने में। बार = देर। बिरवान = पौधे। पात = पत्ते। वाको = उसका। लीन = रखा हुआ, मिला हुआ। तिय = स्त्री। नैननि = आँखों में। नीको लगै = अच्छा लगता है। मलीन = मलिन, काला।

बिहारी

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परे, स्याम हरित दुति होय ॥
अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठ पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष रँग होति ॥
अलि, इन लोयन को कछू, उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नितप्रति रहैं तऊ न प्यास बुझाय ॥
इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरजोई नाहिँ।
देखत बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिँ ॥
यद्यपि सुन्दर सुघर पुनि, सगुनो दीपक देह।
तऊ प्रकास करै तितो, भरिये जितो सनेह ॥
बर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान तें, हरि नीके ये नैन ॥
सोहत ओढ़े पीत पटु, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमनि सैल पर, आतप पर्‍यो प्रभात ॥
लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिँ।
ये मुँहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जाहिँ ॥

भव-बाधा = सांसारिक संकट। नागरि = स्त्री, रमणी। झाईं = परछाईं, छाया। दुति = द्युति, शोभा। दीठ = दृष्टि, नज़र। जोति = ज्योति। हरित = हरे। लोयन = आँखों। सिरजोई = उत्पन्न हुआ। तितो = उतना ही। जितो = जितना। सनेह = स्नेह, तेल। बर = श्रेष्ठ। सर = बाण, तीर। मैन = कामदेव। नैनान = आँखों से। नीके = अच्छे हैं। सलोने = सुन्दर। सैल = पर्वत। आतप = धूप। मुँहजोर = लगाम न मानने वाले। तुरंग = घोड़े। ऐंचत = खींचने पर।

तौ लगि मो मन सदन में, हरि आवैं केहिबाट।
विकट जटे जौलौं निपट, खुलै न कपट कपाट॥
पाँय महावर देन को, नायन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी, एँड़ी मींड़त जाय॥
जब जब वे सुधि कीजिए, तब तब सब सुधि जाहिँ।
आँखिन आँख लगी रहै, आँखैं लागति नाहिँ॥
सघन कुंज छाया सुखद, सीतल मन्द समीर।
मन ह्वै जात अजौं वही, वा जमुना के तीर॥
कहलाने एकत रहत, अहि, मयूर, मृग, बाघ।
जगत तपोवनसों कियो, दीरघ दाघ निदाघ॥
इहि आशा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
ऐ है बहुरि बसन्त ऋतु, इन डारन वै फूल॥
या अनुरागी चित्त की गति समुझत नहिँ कोय।
ज्यों ज्यों बूड़े श्याम रँग, त्यों त्यों उज्जल होय॥
सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन बसो, सदा बिहारी लाल॥

——

जटे = लगे हुए। निपट = अत्यन्त। कपाट = किवाड़। मीड़त = मींजती है, रँग छुड़ाने का प्रयत्न करती है। आँखिन .... रहै = आँखों से आँख लगी रहती है, प्रेम हो जाता है। आँखें लागति नाहिं = आँखें नहीं लगतीं, नींद नहीं आती। सघन = घना। अजौं = आज भी। अहि = सर्प। मयूर = मोर। मृग = हरिण। दाघ = दग्ध करने वाला। निदाघ = ग्रीष्म ऋतु, गर्मी। अलि = भौंरा। ऐहै = आवेगा। बहुरि = पुनः। श्याम = कृष्ण, काला। उज्जल = उजला, निर्मल। सीस = सिर। कटि = कमर। बानिक = वेप।

रसखान

मानुष हौं तो वही रसखानि, बसौ व्रजगोकुल गाँव के ग्वारन।
जौ पसु हौं तो कहा बसु मेरो, चरौ नित नन्दकी धेनु मझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को, जो पुरन्दरछत्र कर्यो कर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरो करौ, मिलि कालिन्दी कूलकदम्ब की डारन
या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँपुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवोनिधि को सुख, नन्द की गाइ चराइ बिसारौं॥
रसखानि कबौं इन आँखिन सौं, व्रजके बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिक हौं कलधौत के धाम, करील की कुंजन ऊपर वारौं॥
मोरपखा सिर ऊपर राखिहौं, गुंज की माल गरे पहिरौंगी।
ओढ़ि पिताम्बर लै लकुटी बन, गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी॥
भावतो वोहि मेरो रसखानि सो, तेरे कहे सब स्वांग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरा न धरौंगी॥
आयोहुतो नियरे रसखानि, कहा कहूँ तू न गई वहि ठैया।

ग्वारन = ग्वालों, अहीरों में। वसु = वश। धेनु = गाय। मझारन = मध्य में, बीच में। पाहन = पत्थर। गिरि = पर्वत। पुरन्दर = इन्द्र। कर्‍यो कर धारन = हाथों पर धारण किया। खग = पक्षी। कूल = तट। लकुटी = लकड़ी, डंडा। कामरिया = कम्बल। आठहु सिद्धि = आठ सिद्धियाँ, अणिमा-महिमा-गरिमा-लघिमा-प्राप्ति-प्राकाम्य-ईशित्व और वशित्व। नवो निधि = नौ निधियाँ, महापद्म, पद्म, शङ्ख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील और खर्व। चराइ = चराकर। बिसारौं = भुला दूँ। तड़ाग = तालाब, बावली। निहारौं = देखूँ। कलधौत = सुवर्ण, सोना। करील = करीर, बबूर का पेड़। गुंज = गुंजा, लाल रङ्ग की घुँघची। भावतो = अच्छा लगनेवाला, प्रेमी। नियरे = नज़दीक। वहि ठैयाँ = उसी जगह।

या व्रज में सिगरी बनिता, सब वारति प्राननि लेति बलैया ॥
कोउ न काहु की कानि करै, कछु चेटक सो जु करयो जदुरैया ।
गाइगो तान जमाइगो नेह, रिझाइगो प्रान चराइ गो गैया ॥
मेरो सुभाव चितैबे को माईरी, लाल निहारि कै बंसी बजाई ।
वा दिनतें मोहिँ लागी ठगौरीसी, लोग कहैं कोई बावरी आई
यों रसखानि घिरयो सिगरो, व्रज जानत है कि मेरो जियराई ॥
जो कोउ चाहै भलौ अपनो, तो सनेह न काहू सों कीजिए माई ।
धूर भरे अतिसोभित स्याम जू, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी ।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैजनि बाजती, पीरी कछोटी ॥
वा छबि को रसखानि बिलोकत, बारत काम कलानिधि कोटी ।
काग के भाग कहा कहिए हरि, हाथ सो लै गयो माखन रोटी
द्रौपदी औ गनिका गज गीध अजामिल सों कियो सो न निहारो
गौतमगेहिनि कैसे तरी, प्रह्लाद को कैसे हरयो दुखभारो ॥
काहे को सोच करै रसखानि, कहा करिहै रविनन्द विचारो ।
कौन की संक परी है जु माखन चाखन हारो है राखनहारो ॥

आपनो सो ढोटा हम सबही को जानति हैं,
दोऊ प्रानी सबहिं के काज नित धावहीं ।

सिगरी = सभी । कानि = परवाह । चेटक = जादू । गाइगो = गा गया । चितैबे को = देखने, पहिचानने को । ठगौरी = ठगी हुई सी, सुधबुध खो गयी । जियराई = हृदयही ।

पैजनी = पैरों में पहनने का एक आभूषण, जो बच्चों को पहनाया जाता है । कछोटी = काछ, घुटनों तक रहने वाली धोती । वारत = न्यौछावर करता है । काग = कौआ । निहारो = देखो । गौतम-गेहिनी = अहल्या । संक = डर । ढोटा = लड़का ।

ते तो रसखानि सब दूर तें तमासो देखैं,
तरनि तनूजा के निकट नहिं आवहीं ॥
आनदिन बात अनहितुन सों कहौं कहा,
हितू जे जे आये तेऊ लोचन दुरावहीं ।
कहा कहौं आली खाली देत सब ठाली हाय !
मेरे बनमाली को न काली ते छुड़ावहीं ॥

तरनि-तनूजा = सूर्य की बेटी, यमुना। आनदिन = दूसरे दिन। दुरावहीं = छिपाते हैं। ठाली = झूठी बात बनाते, धोखा देते हैं। काली = कालीदह, जहाँ कालिय सर्प रहता था और श्रीकृष्ण ने जिसको पछाड़ा था।

पद्माकर

जाहिर जागति सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी।
त्यों पद्माकर हीरा के हारन गंग तरंगन सी सुखदेनी॥
पाँयन के रँग सों रँगि जाति सी भाँति ही भाँति सरस्वति सेनी
थैरे जहाँई जहाँ वह बाल तहा तहाँ ताल में होत त्रिबेनी॥
थे ब्रजचन्द चलौ छिन वा ब्रज लूक बसन्त की ऊकन लागी।
त्यों पद्माकर पेखो पलासन पावक सी मनो फूँकन लागी॥
वै ब्रजनारी विचारी बधू बन बावरी लौं हिये हूकन लागी।
कारी कुरूप कसाइन पै सु कुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागी॥

जैसो तै न मोसों कहूँ नेकहू डरात हुतो,
अब हौंहू नेकहूँ न तोसों कबौं डरिहौं।
कहै पद्माकर प्रचण्ड जो परैगो तो,
उमण्ड करि तोसों भुजदण्ड ठोंकि लरिहौं॥
चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीच ही ते,
कीच बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौं।
येरे दगादार मेरे पातक अपार,
तोहिं गंगा के कछार में पछार छार करिहौं॥

जाहिरै = प्रगट ही। उमहै = उमड़ती है। सेनी = श्रेणी, कतार। थैरे = तैरती है। लूक = गर्म हवा। ऊकनलागी = चलने लगी। पलासन = किंशुक, टेसू। पावक = अग्नि। बावरी = पगली। क्वैलिया = कोयल। उमण्डकरि = उमड़ कर, चढ़ कर। बिचलु = हटजाना, विचलित हो जाना। तो = तेरे। कचरिहौं = कुचल डालूँगा। दगादार = धोखेबाज़। पातक = पाप। कछार = किनारा। छार = नष्ट।

देव नरकिन्नर कितेक गुन गावत,
पै पावत न पार जा अनन्त गुन पूरे को।
कहै पद्माकर सुगाल के बजावत ही,
काज करि देत जन जाचक जरूरे को॥
चन्द की छटान जुग पन्नग फटान जुत,
मुकुट बिराजै जटा जूटन के जूरे को।
देखो त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,
पैये फल चार फूल एक दै धतूरे को॥

ब्याधहू तें बिहद असाधु हौं अजामिल लौं,
ग्राह ते गुनाही कहो तिनमें गिनाओगे।
स्योरी हौं न सूद्र हौं न केवट कहूँ को त्यों,
न गौतमी तिया हौं जापै पग धरि आओगे॥
राम सों कहत पद्माकर पुकारि,
तुम मेरे महापापन को पारहू न पाओगे।
झूठो ही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी,
हौं तो साँचोहू कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे॥

गुनपूरे = गुणपूर्ण, गुणी। जाचक = प्रार्थी। जरूरे = आवश्यक। जुग = दोनों। फटान जुत = फनों के साथ। फलचार = धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, ये चार फल। बिहद = बेहद, अत्यन्त अधिक। असाधु = बुरा। स्योरी = सेवरी, रामचन्द्र को अपने जूठे बेर खिलाने वाली मशहूर भीलनी। गौतमी तिया = अहल्या। हौं = मैं।

भूषण

बिना चतुरंग संग बानरन लै कै बाँधि,
वारिधि को लङ्क रघुनन्दन जराई है।
पारथ अकेले द्रोन भीषम सों लाख भट,
जीति लीन्हीं नगरी बिराटमें बड़ाई है।
भूषन भनत है गुसलखाने में खुमान,
अवरंग साहिबी हथ्याय हरि लाई है।
तौ कहा अचंभो महाराज सिवराज सदा,
बीरन कै हिम्मतै हथ्यार होत आई है॥

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहूँपुर मानी।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकहु ब्यास के अंग सोहानी॥
भूषन यों कलि के कबिराजन राजन के गुन गाय नसानी।
पुन्य चरित्र सिवा सरजै सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी॥

चतुरंग = चतुरंगिणी सेना, जिसमें हाथी, घोड़े, पैदल और रथ होते हैं। वारिधि = समुद्र। पारथ = अर्जुन। भट = वीर। गुसलखाना = स्नानगृह। हथ्याय = आत्मसात् करके, अपने कब्ज़े में करके। हरिलाई है = छीन लाये हैं। अचंभा = आश्चर्य। हिम्मतै = हिम्मत ही। हथ्यार = हथियार, अस्त्र-शस्त्र। आनन = मुँह। पुनीत = पवित्र। तिहूँ पुर = तीनों लोकों, स्वर्ग, मर्त्य, पाताल में। बरने = वर्णन करने के कारण। सोहानी = शोभित हुई। कबिराजन = कविश्रेष्ठों, कवियों ने। राजन = राजाओं के। सरजा सिवा के पुण्य चरित्र रूपी सर में स्नान करके फिर वाणी पवित्र हो गई।

दान समै द्विज देखि मेरुहू कुबेरहू की,
सम्पति लुटाइबे को हियो ललकत है।
साहि के सपूत सिव साहि के बदन पर,
सिव की कथान में सनेह झलकत है॥
भूषन जहान हिन्दुआन के उबारिबे को,
तुरकन मारिबे को बीर बलकत है।
साहिन सों लरिबे की चरचा चलत आनि,
सरजा के दृगन उछाह छलकत है॥

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो
अस्मृतिपु रान राखे बेदविधि सुनी मैं।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की
धरा में धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं॥
भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की
देस देस कीरति बखानी तब सुनी मैं।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी
दिल्लीदल दाबि के दिवाल राखी दुनी मैं॥
कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि
कीन्हीं सिवराज वीर अकह कहानियाँ।

मेरु = मेरुपर्वत। कुबेर = धनाधिपति। ललकत = आतुर हो उठता है। जहान = संसार। उबारिबे को = उद्धार करने के लिए। तुरकान = मुसलमानों के। बलकत हैं = उबल रहे हैं। उछाह = उत्साह।

हिन्दुवानी = हिन्दुत्व। धरा = पृथ्वी। बखानी = प्रशंसा होते। समसेर = तलवार। दिवाल = दीवार, मर्यादा। दुनी = दुनियाँ। कत्ता = एक अस्त्र विशेष। कराकनि = काटने के शब्दों से। कटक = सेना। अकह = अकथनीय।

भूषन भनत तिहुँ लोक में तिहारी धाक
दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानियाँ ॥
आगरे अगारन ह्वै फाँदतीं कगारन छ्वै
बाँधतीं न बारन मुखन कुम्हलानियाँ।
कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जायँ
बीबी गहे सूथनी सुनीवी गहे रानियाँ ॥
वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत
रामनाम राख्यो अति रसना सुघर मैं।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखो है सिपाहिन की
काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं॥
मींड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह
वैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर में।
राजन की हद्द राखी तेगबल सिवराज
देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं॥

भनत = कहता है । तिहुँ लोक = तीनों लोक, स्वर्ग, मर्त्य, पाताल । धाक = रोब, आतंक । बिलाइत = विदेश । बिललानियाँ = रो पड़े, तंग आ गये । अगारन = घर, मकान । ह्वै = होकर । फाँदतीं = कूदती है । कगारन = किनारों को । छ्वै = छूकर । बारन = केशों को । कीबी = करना । बीबी = मुसलमानों की स्त्रियाँ । सूथनी = पायजामा । नीबी = स्त्रियों की धोतीका बन्धान । बिदित = मशहूर । रसना = जीभ । सुघर = अच्छी । गर = गले । मीड़ि = मसलना । मरोड़ि = नष्ट कर देना, तोड़-फोड़ डालना । पातसाह = मुसलमानी राज । कर = हाथ । हद्द = सीमा । तेगबल = तलवार के ज़ोर से । देव = देवता । देवल = मन्दिर ।

केशव

[सीता की अग्निपरीक्षा]

(भुजंग प्रयात)

सबला सबै अंग सिंगार सोहैं। विलोके रमादेव देवी विमोहैं ॥
पिता अंक ज्यों कन्यका शुभ्रगीता। लसै अग्निके अंक त्यों शुद्धसीता
महादेवके नेत्रकी पुत्रिकासी। कि संग्राम के भूमि में चण्डिकासी
मनो रत्नसिंहासनस्था सची है। किधौं रागिनी रागपूरे रची है ॥
गिरापूरमें है पयोदेवता सी। किधौं कंजकी मंजु शोभा प्रकासी
किधौं पद्महीमें सिफाकन्द सोहै। किधौं पद्मके कोष पद्मा विमोहै
कि सिन्दूर शैलाग्रमें सिद्धकन्या। किधौं पद्मिनी सूर संयुक्त धन्या
सरोजासना है मनो चारु बानी। जपापुष्पके पास बैठी भवानी ॥
किधौं औषधीवृन्दमें रोहिणीसी। कि दिग्दाहमेंदेखिए योगिनीसी
धरापुत्रज्योंस्वर्णमाला प्रकासै। किधौंज्योतिसी तत्तकाभोगभासै

विमोहैं = मोहित होजाते हैं। शुभ्रगीता = जिसकी पवित्रता विख्यात हो। अंक = गोद। पुत्रिका = पुतली। संग्राम = लड़ाई। सची = इन्द्राणी। गिरापूर = सरस्वती, प्रवाह। पयोदेवता = जलदेवी। कंज = कमल। मंजु = सुन्दर। पद्म = कमल। सिफाकन्द = कमल की जड़। पद्मा = लक्ष्मी। सिन्दूर......सिद्ध कन्या = सेँदुर के पहाड़ की चोटी पर बैठी हुई सिद्ध कुमारी के समान। पद्मिनी = कमलिनी। सूर संयुक्त = सूर्य किरनों से युक्त। सरोजासना = लक्ष्मी। चारु = सुन्दर। बानी = वाणी, सरस्वती। जपापुष्प = जवाके फूल। औषधी = वनस्पति, जड़ी-बूटी आदि। रोहिणी = एक नक्षत्र, चन्द्रमा की स्त्री। दिग्दाह = योगिनी = दुर्गा की ६४ सखियाँ, योग करने वाली। धरापुत्र = मङ्गल ग्रह। तत्तकाभोग = तक्षक सर्प का फन या शरीर।

(उपेन्द्रवज्रा)

आसावरी माणिक कुम्भ सोभै, अशोक लग्ना वनदेवता सी।
पलाशमाला कुसुमालि मध्ये, वसन्तलक्ष्मी शुभलक्षणा सी॥
आरक्तपत्रा शुभचित्रपुत्री, मनो विराजै अति चारु वेषा।
सपूर्ण सिन्दूर प्रभा बसै धौं, गणेशभालस्थल चन्द्ररेखा॥

(उत्तगयन्द सवैया)

है मणिदर्पण में प्रतिबिम्ब कि प्रीति हिये अनुरक्त अभीता।
पुञ्ज प्रताप में कीरति सी तप तेजन में मनु सिद्धि विनीता॥
ज्यों रघुनाथ तिहारिय भक्ति लसै उर केशव के शुभ गीता।
त्यों अवलोकिय आनन्दकन्द हुतासन मध्य सबासन सीता॥

आसावरी...... वनदेवता सी=मानो आसावरी रागिनी मणिका घड़ा लिए हो, अथवा अशोक वृक्ष या वन देवी बैठी हो। पलाशमाला= किंशुक के वृक्ष। कुसुमालि=फूलों का समूह। आरक्तपत्रा=जिसके पत्ते लाल हों। चित्रपुत्री=तस्वीर की पुतली। चारुवेषा=सुन्दर वेष वाली। धौं=अथवा। अभीता=निडर। पुञ्ज प्रताप=प्रताप के समूह में। तिहारिय=तुम्हारा ही। हुतासन=अग्नि। सबासन=वस्त्रों के सहित।

सत्यनारायण

(अमरदूत)

पावन सावन मास नई उनई घन पाँती।
मुनि मनभाई छयी रसमयी मंजुल काँती ॥
सोहत सुन्दर चहुँ सजल, सरिता पोखर ताल।
लोल लोल तहँ अति अमल, दादुर बोल रसाल ॥
छटा चूई परै ॥१॥

अलबेली कहुँ वेलि द्रुमन सों लिपटि सुहाई।
धोये धोये पातन की अनुपम कमनाई ॥
चातक चलि कोयल ललित, बोलत मधुरे बोल।
कूकि कूकि केकी कलित, कुञ्जनु करत कलोल ॥
निरखि घन की छटा ॥२॥

इन्द्र धनुष औ इन्द्र बधूटिन की सुचि सोभा।
को जग जनम्यो मनुज जासु मन निरखि न लोभा ॥
प्रिय पावन पावस लहरि, लहलहात चहुँ ओर।
छाई छवि छिति पै छहरि, ताको ओर न छोर ॥
लसै मन मोहनी ॥३॥

उनई = घिर आयी। पाँती = पंक्ति, समूह। छई = छाई, फैली। काँती = कान्ति, शोभा। पोखर = तलैया। चूई परै = छलकी जारही है। बेलि = लता। द्रुमन = वृक्षों। कमनाई = कमनीयता, सुन्दरता। केकी = मयूरी। कलोल = कल्लोल, प्रसन्नता का शोर। मनुज = मनुष्य। लोभा = लुब्ध हुआ। लहरि = लहर। छहरि = बिखरी हुई।

कहूँ बालिका-पुञ्ज कुञ्ज लखि परियत पावन।
सुख सरसावन, सरल सुहावन हिय हरसावन॥
कोकिल कंठ लजावनी, मन भावनी अपार।
भ्रातृ प्रेम सरसावनी, रागति मंजु मल्हार॥
हिंडोलनि झूलतीं॥४॥

कृष्ण बिरह की बेलि नई ता उर हरियाई।
सोचन अस्रु विमोचन दोउ दल बल अधिकाई॥
पाइ प्रेमरस बढ़ि गई, तन तरु लिपटी धाइ।
फैल फूटि चहुँधा छई, बिथा न बरनी जाइ॥
अकथ ताकी कथा॥५॥

नारी सिक्षा अनादरत जे लोग अनारी।
ते स्वदेस अवनति प्रचंड पातक अधिकारी॥
निरखि हाल मेरो प्रथम, लेउ समुझि सब कोइ।
बिद्या बल लहि मति परम, अबला सबला होइ॥
लखौ अजमाइ के॥६॥

तेरो तन घनस्याम, स्याम घनस्याम उतै सुनि।
तेरी गुञ्जनि सुरलि मधुप, उत मधुर मुरलि धुनि॥

परियत=पड़ता है। रागति=गाती हैं। मल्हार=वर्षा में गाया जाने वाला एक राग।

बेलि=लता। ता उर=उसके हृदय में। हरियाई=हरी हो गई। अस्रु=आँसू। चहुँधा=चारों ओर। छई=छा गयी। अनारी=निर्बुद्धि। पातक=पाप। अजमाइ=परीक्षा करके। सुरलि=सुरीली। मधुप=भौंरा। धुनि=ध्वनि, शब्द।

पीत रेख तव कटि बसत, उत पीताम्बर चारु।
विपिन बिहारी दोउ लसत, एक रूप सिंगार॥
जुगुल रस के चखा॥ ७॥

नित नव परत अकाल, काल को चलत चक्र चहुँ।
जीवन को आनन्द न देख्यो जात यहाँ कहुँ॥
बढ्यो यथेच्छाचार कृत, जहँ देखो तहँ राज।
होत जात दुर्बल विकृत, दिन दिन आर्यसमाज॥
दिनन केफेर सों॥८॥

टिमटिमात जातीय जोति जो दीप सिखा-सी।
लगत बाहिरी ब्यारि बुझन चाहत अबला-सी॥
सेष न रह्यो सनेह को, काहू हिय में लेस।
कासों कहिये गेह कों, देसहि में परदेस॥
भयो अब जानिये॥९॥

चारु = सुन्दर। चखा = चखने वाले। ब्यारि = बयार, हवा।

हरिश्चन्द्र

(१)

तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सों जल-परसन हित मनहुँ सुहाये॥
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल लोभा॥
मनु आतप वारन तीर को, सिमिटि सबै छाये रहत।
कै हरि-सेवा हित नै रहे, निरखि नैन-मन सुख लहत॥
कहूँ तीर पर अमलकमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत निज सोभा।
कै उमगे प्रिय प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा॥
कै करि के कर बहु पीय को, टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै, चलति मिलन मन-मोहई॥
कूजत कहुँ कलहंस कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारण्डव उड़त कहूँ जल कुक्कुट धावत॥

तरनि-तनूजा = कालिन्दी, यमुना। तमाल = एक वृक्ष। परसनहित = स्पर्श करने, छूने के लिए। किधौं = अथवा। मुकुर = दर्पण, आइना। उझकि = झुककर। कै = अथवा। प्रनवत = प्रणाम करते हैं। आतप = धूप। वारन = हटाने, रोकने के लिए। नै = झुके। अमल = निर्मल, सुन्दर। सैवाल = सेवार। कुमुदिनी = कमलिनि। पाँतिन = सिलसिले से, कतार से। दृग = आँखें। गोभा = प्रेरणा। पारावत = कबूतर। कारण्डव = हंस की एक जाति। जल कुक्कुट = बतक़।

चक्रवाक कहुँ बसत कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक पिक जल कहुँ पियत कहूँ भ्रमरावलि गावत॥
कहुँ तट पर नाचत मोर बहु, रोर विविध पच्छी करत।
जलपान न्हान करि सुख भरे, तट सोभा सब जिय भरत॥

(२)

सोओ सुख-निंदिया प्यारे ललन।
नैनन के तारे दुलारे मेरे बारे, सोओ सुख-निंदिया प्यारे ललन
भई आधीरात, बन सनसनात, पसु पंछी कोउ आवत न जात।
जग प्रकृति भई मनु थिर लखात, पातन नहिं पावत तरुनहलन।
झलमलत दीप सिर धुनत आय, मनु प्रिय पतंग हित करतहाय,
सतरात अंग आलस जनाय, सनसन लगी सीरी पवन चलन॥
सोये जग के सब नींद घोर, जागत कामी चिंतित चकोर,
बिरहिन, बिरही, पाहरू, चोर, इन कहँ छन रैनहुँ हाय कलन॥

(३)

जग में पतिव्रत सम नहिं आन।
नारि हेतु कोउ धर्म न दूजो, जग में यासु समान।
अनुसूया, सीता, सावित्री इनके चरित प्रमान।
पति देवता तीय जग धन धन गावत वेद पुरान॥

चक्रवाक = चकवा। बक = बगुला। सुक = तोता। पिक = कोयल। भ्रमरावलि = भौंरों का समूह। रोर = पक्षियों का रव, चहचहाना। न्हान = स्नान।

थिर = स्थिर, चुपचाप। लखात = दीख पड़ती है। पातन...... हलन = वृक्ष की पत्तियाँ तक नहीं हिलने पातीं। सतरात = अप्रसन्न होता है। सीरी = ठंढी। कल = चैन। यासु = इसके।

धन्य देस कुल जहँ निबसत है नारी सती सुजान।
धन्य समय जब जन्म लेत ये धन्य व्याह असथान ॥
सब समर्थ पतिबरता नारी इन सम और न आन।
याही ते स्वर्गहु में इनको करत सब गुन गान ॥

(४)

नव उज्जल जलधार हार हीरक-सी सोहति।
बिच बिच छहरति बूँद मध्य मुक्तामनि पोहति ॥
लोल लहर लहि पवन एक पै इक इमि आवत।
जिमि नरगन मन विविध मनोरथ करत मिटावत ॥
सुभग स्वर्ग सोपान सरिस सबके मन भावत।
दरसन मज्जन पान त्रिविध भय दूर मिटावत ॥
श्री हरि-पद-नख-चन्द्रकान्त-मन-द्रवित-सुधारस।
ब्रह्म कमण्डल मण्डन भव खण्डन सुर सरबस ॥
शिव-सिर-मालति-माल-भगीरथ नृपति-पुण्य-फल।
ऐरावत-गज-गिरिपति-हिम-नग-कण्ठहार कल ॥
सगर सुवन सठ सहस परस जलमात्र उधारन।
अगनित धारा रूप धारि सागर संचारन ॥
कासी कहँ प्रिय जानि ललकि भेंट्यो जग धाई।
सपनेहूँ नहिं तजी रही अंकम लपटाई ॥

असथान = स्थान, जगह। आन = दूसरा।

छहरति = छिटकती है। लोल = चंचल। लहि = पाकर। सरिस = समान। मजन = स्नान करना। त्रिविध = तीन प्रकार के—दैहिक, दैविक और भौतिक। चन्द्रकान्त = मणि विशेष। द्रवित = पिघला हुआ। ऐरावत = हाथियों में श्रेष्ठ, इन्द्र का हाथी। हिमनग = हिमालय पर्वत। कल = श्वेत। सगर-सुवन = सगर नामक राजा के पुत्र। सठ सहस = साठ सहस्र। परस = स्पर्श। ललकि = दौड़कर। भेंट्यो = मिली। अंकम = छाती, हृदय।

पं० प्रतापनारायण मिश्र

(हिन्दी की हिमायत)

चहहु जो साँचौ निज कल्यान।
तो सब मिलि भारत सन्तान॥
जपौ निरन्तर एक ज़बान।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान॥
तबहिं सुधरि है जन्म निदान।
तबहिं भलो करि है भगवान॥
जब रहि है निसिदिन यह ध्यान।
हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान॥

(बुढ़ापा)

हाय बुढ़ापा तोरे मारे अब तो हम नकन्याय गयन।
करत धरत कछु बनतै नाहीं कहाँ जान औ कैस करन॥
छिन भरि चटक छिनै या मद्धिम जस बुझात खन होय दिया।
तैसे निखवख देखि परत हैं हमरी अक्किल के लच्छन॥
अस कुछ उतरि जाति है जीते बाजी बेरियाँ बाजी बात।
कैस्यो सुधि ही नाहीं आवत मूँडुइ काहे न दै मारन॥

साँचौ = सच्चा, असली। निदान = अन्त में, कारण। नकन्याय = नकिया जाना, नाक में दम आ जाना। गयन = गये। कैस = कैसा, क्या। मद्धिम = मध्यम, मन्द। खन = क्षण, समय। निखवख = निश्चित। उतरि जाति है = भूल जाती है। बिरियाँ = बार, वख़्त। बाजी = बाज़, कोई। कैस्यो = किसी प्रकार। सुधि = याद। मूड़ुइ = सिरही।

कहा चहैं कुछु निकरत कुछु है जीभ राँड़ का है यहु हालु।
कोऊ इहि का बात न समझै चाहे बीसन दायँ कहन॥
दाढ़ी, नाक याक माँ मिलि गै बिन दाँतन मुँह्र अस पोपलान।
दढ़ियै पर बहि बहि आवत है कबौं तमाखू जो फाँकन॥
बार पाकि गै रीरौ झुकि गै मूँड़ौ सासुर हालन लाग।
हाथ पाँव कछु रहे न आपन केहि के आगे दुख र्‌वावन॥
यही लकुटिया के बूते अब जस तस डोलित डालित है।
जेहि का लै के सब कामन माँ सदा खखारत फिरत रहन॥
जियत रहैं महाराज सदा जो हम ऐस्यन का पालत हैं।
नाहीं तो अब को धौं पूँछैं केहि के कौने काम के हन॥

(भजन)

जागो भाई जागो रात अब थोरी।
काल चोर नहिँ करन चहत है जीवन धन की चोरी॥
औसर चूके फिरि पछितैहो हाथ मींजि सिर फोरी।
काम करो नहिं काम न ऐहैं बातें कोरी कोरी॥
जो कुछ बीती बीत चुकी सो चिन्ता ते मुख मोरी।
आगे जामें बनै सो कीजै करि तन मन इकठौरी॥

दायँ = दफ़ा, बार। याक = एक। पोपलान = पिचक गया, ढीला पड़ गया।

रीरौ = कमर। हालन = हिलने। र्‌वावन = रोवें। लकुटिया = लकड़ी, लाठी। बूते = बल पर। जस तस = जैसे तैसे। डोलित डालित है = चलता फिरता हूँ। जेहिका = जिसको। खखारत फिरत रहन = खखारता फिरता, अकड़ता फिरता था। ऐस्यन = ऐसों। हन = हैं, हूँ। थोरी = थोड़ी। औसर = अवसर, मौक़ा। मींजि = मलकर। कोरी = सिर्फ़, खाली। मोरी = मोड़ कर। बनै = भला हो। इकठौरी = एक जगह।

कोऊ काहू को नहिं साथो मात पिता सुत गोरी ।
अपने करम आपने संगी और भावना भोरी ॥
सत्य सहायक स्वामि सुखद से लेहु प्रीति जिय जोरी ।
नाहिँ त फिर 'परताप हरी' कोउ बात न पूछहि तोरी ॥

गोरी = स्त्री । भोरी = भोली । जोरी = जोड़ । तोरी = तुम्हारा ।

पं० नाथूराम 'शंकर' शर्मा

(१)

शैल विशाल महीतल फोड़ बढ़े तिनको तुम तोड़ कढ़े हौ ।
लै लुड़की जलधार धड़ाधड़ ते वर गोल मटोल गढ़े हौ ॥
प्राण विहीन कलेवर धार विराज रहे न लिखे न पढ़े हौ ।
हे जड़देव ! शिलासुत शंकर !! भारत पै करि कोप चढ़े हौ ॥

(२)

भरिबो है समुद्र को शम्बुक में
छिति को छिगुनी पर धारिबो है ।
बँधिबो है मृणाल सों मत्त करी
जुही फूल सों शैल बिदारिबो है ॥
बँधिबो है सितारन को कवि 'शंकर'
रेणु सों तेल निकारिबो है ।
कविता समुझाइबो मूरख को
सविता गहि भूमि पै डारिबो है ॥

महीतल = ज़मीन । कढ़े = निकले । कलेवर = शरीर । शम्बुक = सीप, घोंवा । छिति = भूमि, पृथ्वी । छिगुनी = सब से छोटी उँगली, कनिष्ठिका । मृणाल = कमल की डण्डी । मत्त = पागल । करी = हाथी । शैल = पर्वत । बिदारिबो = तोड़ना । सितारन = ताराओं को । रेणु = बालू । सविता = सूर्य । गहि = पकड़ कर । डारिबो = गिराना ।

(३)

कज्जल के कूट पर दीप शिखा सोती है कि
श्याम घनमण्डल में दामिनी की धारा है।
यामिनी के अंक में कलाधर की कोर है कि
राहु के कबन्ध पै कराल केतु तारा है॥
शंकर कसौटी पर कंचन की लीक है कि
तेज ने तिमिर के हिये में तीर मारा है।
काली पाटियों के बीच मोहिनी की माँग है कि
ढाल पर खाँड़ा कामदेव का दुधारा है॥

(४)

आँख से न आँख लड़ जाय इसी कारण से
भिन्नता की भीत करतार ने लगाई है।
नाक में निवास करने को कुटी शंकर की
छवि ने छपा कर की छाती पै छवाई है॥
कौन मान लेगा कीर तुण्ड की कठोरता में
कोमलता तिल के प्रसून की समाई है।
सैकड़ों नकीले कवि खोज खोज हारे पर
ऐसी नासिका की कहूँ उपमा न पाई है॥

कूट = पर्वत। श्याम = काले। घनमण्डल = बादलों का समूह। दामिनी = बिजली। धारा = प्रवाह, रेखा। यामिनी = रात्रि। अंक = गोद। कलाधर = चन्द्रमा। राहु = एक अशुभ ग्रह। कबन्ध = धड़। कराल = भयंकर। कसौटी = सोना चाँदी का परखने वाला पत्थर। कंचन = सोना। लीक = लकीर, रेखा। तेज = प्रकाश। तिमिर = अन्धकार। पाटियां = दोनों ओर फेरे हुए बाल। भीत = दीवाल। करतार = विधाता। छपाकर = चन्द्रमा। कीर तुण्ड = तोते की चोंच। प्रसून = फूल। नकीले = नक्कू।

पं० श्रीधर पाठक

(वन शोभा)

चारु हिमाचल आँचल में एक साल विसालन को बन है ।
मृदु मर्मरशील झरैं जल-स्रोत हैं पर्वत ओट है निर्जन है ॥
लिपटे हैं लता द्रुम, गान में लीन प्रवीन विहंगन को गन है ।
भटक्यौ तहाँ रावरो भूल्यो फिरै मद बावरो सो अलिको मन है ॥

भारत में बन ! पावन तू ही,
तपस्वियों का तप आश्रम था ।
जग-तत्व की खोज में लग्न जहाँ,
ऋषियों ने अभग्न किया श्रम था ॥
जब प्राकृत विश्व का विभ्रम और था,
सात्विक जीवन का क्रम था ।
महिमा बनवास की थी तब और
प्रभाव पवित्र अनूपम था ॥

(सुसन्देह)

कहीं पै स्वर्गीय कोई बाला सुमञ्जु बीणा बजा रही है ।
सुरों के संगीत की सी कैसी सुरीली गुंजार आ रही है ॥

चारु = सुन्दर । आँचल = अंचल, प्रान्त । साल = एक प्रकार का वृक्ष । विसालन = बड़े-बड़े । मर्मरशील = मर्मरशब्द करनेवाले । जल-स्रोत = झरने । ओट = आड़, पर्दा । द्रुम = पेड़ । विहंगन = पक्षियों । रावरो = आप का । बावरो = पागल । अलि = भौंरा । अभग्न = अटूट, निरन्तर । प्राकृत = सत्य । विभ्रम = घबराहट ।

सुमंजु = अत्यन्त मनोहर ।

हरेक स्वर में नवीनता है, हरेक पद में प्रवीनता है ।
निराली लय है औ लीनता है अलाप अद्भुत मिला रही है ॥
अलक्ष्य पर्दों से गत सुनाती तरल तरानों से मन लुभाती ।
अनूठे अटपट स्वरों में स्वर्गिक सुधा की धारा बहा रही है ॥
कोई पुरन्दर की किंकरी है कि या किसी सुर की सुन्दरी है ।
वियोग-तप्ता सी भोग-मुक्ता हृदय के उद्गार गा रही है ॥
कभी नयी तान प्रेममय है, कभी प्रकोपन कभी विनय है ।
दया है दाक्षिण्य का उदय है अनेकों बानक बना रही है ॥
भरे गगन में हैं जितने तारे हुए हैं मदमस्त गत पै सारे ।
समस्त ब्रह्माण्ड भर को मानों दो उँगलियों पर नचा रही है ।
सुनो तो सुनने की शक्ति वालो सको तो जाकर के कुछ पता लो!
है कौन जोगन जो ये गगन में कि इतनी चुलबुल मचा रही है ॥

तराना = गीत । सुधा = अमृत । पुरन्दर = इन्द्र । किंकरी = दासी । सुर = देवता । प्रकोपन = नाराजी । दाक्षिण्य = अनुकूलता । बानक = वेश । गगन = आसमान । गत = बाजा का स्वर । जोगन = योगिनी ।

श्री मैथिली शरण गुप्त

(शकुन्तला की विदा)

(१)

त्यागी थे मुनि कण्व उन्हें भी करुणा आई,
होती है बस सुता धरोहर, वस्तु पराई।
होम-शिखा की परिक्रमा उससे करवाई,
और उन्होंने स्वस्ति-गिरा यों उसे सुनाई॥

(२)

"तुझको पति के यहाँ मिले सब भाँति प्रतिष्ठा,
ज्यों ययाति के यहाँ हुई पूजित शर्मिष्ठा।
सार्वभौम पुरु पुत्र हुआ था उसके जैसे,
तेरे भी कुल-दीप दिव्य औरस हो वैसे॥

(३)

गुरुओं की सम्मान-सहित शुश्रूषा करियो,
सखी-भाव से हृदय सदा सौतों का हरियो।
करे यदपि अपमान मान मत कीजो पति से,
हूजो अति सन्तुष्ट स्वल्प भी उसकी रति से॥

सुता = लड़की। धरोहर = अमानत। स्वस्ति-गिरा = आशीर्वाद। प्रतिष्ठा = आदर। सार्वभौम = चक्रवर्ती। औरस = पुत्र। शुश्रूषा = सेवा। मान = अभिमान। हूजो = होना। स्वल्प = थोड़ा। रति = प्रसन्नता।

(४)

परिजन को अनुकूल आचरण से सुख दीजो,
कभी भूल कर बड़े भाग्य पर गर्व न कीजो।
इसी चाल से स्त्रियाँ सुगृहिणी-पद पाती हैं,
उलटी चल कर वंश-व्याधियाँ कहलाती हैं ॥"

(स्वयमागत)

तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं ?
सब द्वारों पर भीड़ बड़ी है, कैसे भीतर जाऊँ मैं ?
द्वारपाल भय दिखलाते हैं,
कुछ ही जन जाने पाते हैं,
शेष सभी धक्के खाते हैं,
कैसे घुसने पाऊँ मैं ?
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं ?
मुझमें सभी दैन्य दूषण हैं,
न तो वस्त्र हैं, न विभूषण हैं,
लज्जित किन्तु यहाँ पूषण हैं,
अपना क्या दिखलाऊँ मैं ?
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं ?
मुझमें तेरा आकर्षण है,
किन्तु यहाँ घन संघर्षण है,
इसी लिए दुर्द्धर धर्षण है,
क्यों कर तुझे बुलाऊँ मैं ?

परिजन = घरवालों।

दैन्य = दीनता, दरिद्रता। दूषण = दोष। विभूषण = गहना। पूषण = सूर्य। आकर्षण = खिंचाव। घन = गहरा। संघर्षण = टक्कर, खींचातानी। दुर्धर = न जीता जा सकने वाला। धर्षण = दमन करना, परास्त करना।

तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं ?
तेरी विभव कल्पना करके,
उसके वर्णन से मन भरके,
भूल रहे हैं जन बाहर के,
कैसे तुझे भुलाऊँ मैं ?
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं ?
बीत चुकी है वेला सारी,
आई किन्तु न मेरी बारी,
करूँ कुटी की अब तैयारी,
वहीं बैठ पछताऊँ मैं ?
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं ?
कुटी खोल भीतर आता हूँ,
तो वैसा ही रह जाता हूँ,
तुझको यह कहते पाता हूँ,
अतिथि कहो क्या लाऊँ मैं ?
तेरे घर के द्वार बहुत हैं, किससे होकर आऊँ मैं ?



विभव = धन। अतिथि = आगत, आये हुए।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय

(फूल और काँटा)

हैं जनम लेते जगह में एक ही।
एक ही पौधा उन्हें है पालता ॥
रात में उन पर चमकता चाँद भी।
एक ही सी चाँदनी है डालता ॥
मेह उन पर है बरसता एक सा।
एक सी उन पर हवायें हैं बहीं ॥
पर सदा ही यह दिखाता है हमें।
ढंग उनके एक से होते नहीं ॥
छेद कर काँटा किसी की उँगलियाँ।
फाड़ देता है किसी का वर वसन ॥
प्यार-डूबीं तितलियों का पर कतर।
भौंर का है वेध देता श्याम तन ॥
फूल लेकर तितलियों को गोद में।
भौंर को अपना अनूठा रस पिला ॥
निज सुगन्धों औ निराले रंग से।
है सदा देता कली जी की खिला ॥
है खटकता एक सब की आँख में।
दूसरा है सोहता सुर-सीस पर ॥
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे।
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर ॥

मेह = मेघ। वर = श्रेष्ठ। वसन = कपड़ा। पर = पङ्ख। कतर = काट। सोहता = शोभित होता। सुर = देवता। सीस = सिर।

(एक तिनका)

मैं घमण्डों में भरा ऐंठा हुआ।
एक दिन जब था मुँडेरे पर खड़ा॥
आ अचानक दूर से उड़ता हुआ।
एक तिनका आँख में मेरी पड़ा॥ १॥
मैं झिझक उट्ठा, हुआ बेचैन सा।
लाल होकर आँख भी दुखने लगी॥
मूँठ देने लोग कपड़े की लगे।
ऐंठ बेचारी दबे पावों भगी॥ २॥
जब किसी ढब से निकल तिनका गया।
तब समझ ने यों मुझे ताने दिये॥
ऐंठता तू किस लिये इतना रहा।
एक तिनका है बहुत तेरे लिये॥ ३॥

(एक बूँद)

ज्यों निकल कर बादलों की गोद से।
थी अभी एक बूँद कुछ आगे बढ़ी॥
सोचने फिर फिर यही जी में लगी।
आह क्यों घर छोड़ कर यों मैं कढ़ी॥ १॥
दैव मेरे भाग में क्या है बदा।
मैं बचूँगी या मिलूँगी धूल में॥
या जलूँगी गिर अँगारे पर किसी।
चू पड़ूँगी या कमल के फूल में॥ २॥

ऐंठा = तना। मुँडेरे = छज्जे। ढब = तरकीब, उपाय। कढ़ी = निकली। दैव = विधाता। भाग = भाग्य, प्रारब्ध। बदा = लिखा।

बह गई उस काल एक ऐसी हवा।
वह समुन्दर ओर आई अनमनी॥
एक सुन्दर सीप का मुँह था खुला।
वह उसी में जा पड़ी मोती बनी॥ ३॥
लोग यों ही हैं झिझकते सोचते।
जब कि उनको छोड़ना पड़ता है घर॥
किन्तु घर का छोड़ना अक्सर उन्हें।
बूँद लौं कुछ और ही देता है कर॥ ४॥

अनमनी = चंचल, अन्य मनस्क।

पं० गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'

(लड़कपन)

चित्त के चाव, चोचले मन के,
वह बिगड़ना घड़ी घड़ी बन के।
चैन था, नाम था न चिन्ता का,
थे दिवस और ही लड़कपन के ॥ १ ॥
रूठ जाना कभी न छल जाना,
पाप का पुण्य का न फल जाना।
प्रेम वह खेल से खिलौनों से,
चन्द्र तक के लिये मचल जाना ॥ २ ॥
चन्द्र था और और ही तारे,
सूर्य भी और थे प्रभा धारे।
भूमि के ठाठ कुछ निराले थे,
धूलि-कण थे बहुत हमें प्यारे ॥ ३ ॥
सब सखा शुद्ध चित्तवाले थे,
प्रौढ़ विश्वास प्रेमपाले थे।
अब कहाँ रह गईं बहारें वे,
उन दिनों रंग ही निराले थे ॥ ४ ॥
सूर्य के साथ ही निकल जाना,
दिन चढ़े घूम-घाम कर आना।
काम था काम से न धन्धे से,
काम था सिर्फ खेलना खाना ॥ ५ ॥

चाव = चाह, इच्छाएँ। चोचले = नख़रे। धारे = धारण किये हुए।

फिर मिला इस तरह नया जीवन,
पुस्तकों में पड़ा लगाना मन।
मिल चले जब कि मित्र सहपाठी,
बन गया एक बाग़ बीहड़ बन॥ ६॥
भार यद्यपि कठिन उठाना था,
किन्तु उद्योग ठीक ठाना था।
हौसले से भरा हुआ मन था,
और दिन और ही ज़माना था॥ ६॥
अब दशा वह कहाँ रही मन की,
फ़िक्र है धर्म-धाम, तन, धन, की।
एक घूँसा लगा गई दिल पर,
याद जब आ गई लकड़पन की॥ ८॥

लाला भगवानदीन

(मेहँदी)

तुमने पैरों में लगाई मेंहँदी।
मेरी आँखों में समाई मेंहँदी॥
खूनी होते हैं जगत के सब्ज़ रंग।
दे रही है यह दुहाई मेंहँदी॥
कुल से छूटी कूट कर पीसी गई।
तब तेरे पद छूने पाई मेंहँदी॥
कष्ट से मिलता है जग में इष्ट पद।
बात यह सच्ची बताई मेंहँदी॥
खैर कहता है कलेजा देके निज।
मैंने है राती बनाई मेंहँदी॥
है कथन मेरा मेरे अनुराग से।
ले गई है कुछ ललाई मेंहँदी॥
माई के लालों से यह लाली मिली।
इससे ढाँपे है ललाई मेंहँदी॥
वस्तु मँगनी की सुरक्षित ही रहे।
दिल में रखती है ललाई मेंहँदी॥
नील नभ में ज्यों छिपी ऊषा रहे।
त्यों छिपाती है ललाई मेंहँदी॥
प्रात सन्ध्या से तुम्हारे पैर पर।
व्यक्त करती है ललाई मेंहँदी॥

सब्ज़ = हरे। दुहाई = साक्षी। इष्ट = चाहा हुआ। राती = लाल।

रागमय जन अंग हैं शृङ्गार के।
यह प्रकट देती दोहाई मेंहँदी॥
दिल में रखना चाहिये अनुराग को।
सीख देती है सोहाई मेंहँदी॥
मेरी प्यारी के युगल-चरणों के साथ।
रखती है गाढ़ी सगाई मेंहँदी॥
पैर पड़ पड़ कर पकड़ लेती है हाथ।
छल के वामन से सवाई मेंहँदी॥

(वीर-माता)

वीरों की सुमाताओं का यश जो नहीं गाता।
वह व्यर्थ सुकवि होने का अभिमान जनाता॥
जो वीर-सुयश गाने में है ढील दिखाता।
वह देश के वीरत्व का है नाम लजाता॥
दुनियाँ में सुकवि नाम सदा उसका रहैगा।
जो काव्य में वीरों की सुभग कीर्ति कहैगा॥
'वाल्मीकि' ने जब वीर चरित राम का गाया।
सम्मान सहित नाम अमर अपना बनाया॥
श्री व्यास ने तब नाम सुकवियों में है पाया।
भारत के महायुद्ध का जब गीत सुनाया॥
कब चंद भी हिन्दी का सुकवि आदि कहाता।
यदि वीर पिथौरा का सुयश गान न गाता॥
'होमर' जो है यूनान का कवि आदि कहाया।
उसने भी सुयश वीरों का है जोश से गाया॥

राग = अनुराग, ललाई। सोहाई = शोभित होने वाली। गाढ़ी = अधिक। सगाई = अपनापन, मित्रता। ढील = आलस्य। सुभग = सुन्दर। आदि = पहला।

'फिरदौसी' ने भी नाम अमर अपना बनाया।
जब फारसी वीरों का सुयश गा के सुनाया॥
सब वीर किया करते हैं सम्मान क़लम का।
वीरों का सुयशगान है अभिमान क़लम का॥
इस वक्त हैं हिन्दी के बहुत काव्य धुरंधर।
आचार्य कोई, इन्दु कोई, कोई प्रभाकर।
काव्याद्रि कोई कोई हैं साहित्य के सागर।
हैं काव्य के कानन में कोई सिंह भयंकर॥
मैं काव्य सुकुल-कामिनी का बाल हूँ अज्ञान।
इस हेतु मुझे भाता है माताओं का यशगान॥

———

सम्मान = आदर। काव्याद्रि = कविता के पहाड़। भाता है = अच्छा मालूम पड़ता है।

पं० माखन लालजी चतुर्वेदी

'एक भारतीय आत्मा'

(नव-स्वागत)

तुम बढ़ते ही चले मृदुलतर जीवन की घड़ियाँ भूले।
काठ छेदने लगे सहसदल की नव पंखड़ियाँ भूले॥
मन्द पवन सन्देश दे रहा, हृदय कली पथ हेर रही।
उड़ो मधुप! नन्दनकी दिशिमें ज्वालाएँ घर घेर रही॥
तरुण तपस्वी! आ, तेरा कुटिया में नव स्वागत होगा।
दोषी! तेरे चरणों पर फिर मेरा मस्तक नत होगा॥

(उन्मूलित वृक्ष)

भला किया, जो इस उपवन के सारे पुष्प तोड़ डाले।
भला किया, मीठे फलवाले ये तरुवर मरोड़ डाले॥
भला किया, सींचो-पनपाओ, लगा चुके हो जो कलमें।
भला किया, दुनियाँ पलटा दी प्रबल उमंगों के बल में॥
लो, हम तो चल दिए, नये पौधो—प्यारो आराम करो।
दो दिन की दुनियाँ में आये, हिलो-मिलो कुछ काम करो॥
पथरीले ऊँचे टीले हैं, रोज़ नहीं सींचे जाते।
वे नागर न यहाँ आते हैं, जो थे बागीचे आते॥

सहसदल=कमल। हेर रही=देख रही है, ढूँढ़ रही है। नत=झुका। तरुवर=श्रेष्ठ वृक्ष। कलमें=पौधों की वह शाखें जो एक जगह से उखाड़कर दूसरी जगह लगाई जाती हैं। नागर=भद्रपुरुष।

झुकी टहनियाँ तोड़ तोड़कर, बनचर भी खा जाते हैं।
शाखामृग कन्धों पर चढ़कर, भीषण शोर मचाते हैं॥
दीनबन्धु की कृपा ! बन्धु, जीते हैं, हाँ, हरियाले हैं।
भूले भटके कभी गुज़रना हम वोही फलवाले हैं॥

बनचर = बनैले पशु। शाखामृग = बन्दर। गुज़रना = आना।

श्रीजयशंकर 'प्रसाद'

(विषाद)

कौन प्रकृति के करुण काव्य सा
वृक्षपत्र की मधुछाया में,
लिखा हुआ-सा अचल पड़ा है
अमृत सदृश नश्वर काया में।

अखिल विश्वके कोलाहल से
दूर सुदूर निभृत निर्जन में,
गोधूली के मलिनांचल में
कौन जंगली बैठा बन में?

शिथिल पड़ी प्रत्यंचा किसकी
धनुष भग्न, सब छिन्न जाल है;
बंशी नीरव पड़ी धूल में
तरकस का भी बुरा हाल है।

किसके तममय अन्तरतम में
झिल्ली की झनकार हो रही?
स्मृति सन्नाटे से भर जाती
चपला ले विश्राम सो रही।

मधु = मीठी। अचल = निश्चेष्ट, स्थिर। नश्वर = नाशमान। अखिल = समस्त। कोलाहल = शोरगुल। निभृत = एकान्त। निर्जन = जनहीन। मलिनांचल = धुँधली छाया।

प्रत्यंचा = धनुष की डोरी। भग्न = टूटा हुआ। नीरव = चुप, रवहीन। तममय = अँधेरा। चपला = बिजली।

किसके अन्तःकरण अजिर में
अखिल व्योम का लेकर मोती,
आँसू का बादल बन जाता
फिर तुषार की वर्षा होती ?

विषयशून्य किसकी चितवन है,
ठहरी पलक, अलक में आलस ?
किसका यह सूखा सुहाग है ?
छना हुआ किसका सारा रस ?

निर्झर कौन बहुत बल खाकर
बिलखाता, ठुकराता फिरता,
खोज रहा है स्थान धरा में
अपने ही चरणों में गिरता ?

किसी हृदय का यह विषाद है
छेड़ो मत, यह सुख का कण है;
उत्तेजित कर मत दौड़ाओ,
करुणा का यह थका चरण है।

अजिर = आँगन । अखिल = समस्त । व्योम = आकाश । तुषार = बर्फ । विषयशून्य = निर्विकार, भोली भाली, सरल । अलक = बाल । धरा = पृथ्वी ।

पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

(विधवा)

वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा-सी,
वह दीप-शिखा-सी शान्त, भाव में लीन,
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति-रेखा-सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता-सी दीन—
दलित भारत की विधवा है।
षड् ऋतुओं का शृंगार,
कुसुमित कानन में नीरव पद-संचार,
अमर कल्पना में स्वच्छन्द बिहार—
व्यथा की भूली हुई कथा है
उसका एक स्वप्न अथवा है।
उसके मधु सुहाग का दर्पण,
जिसमें देखा था उसने
बस, एकबार विम्बित अपना जीवनधन,
अबल हाथों का एक सहारा—
लक्ष्य जीवन का प्यारा—वह ध्रुवतारा—
दूर हुआ वह बहा रहा है

दीपशिखा = दीपक की लौ। लीन = लगी हुई, भूली हुई। स्मृति रेखा = याद की निशानी। तरु = वृक्ष। छुटी = गिरी हुई। दीन = ग़रीब। षड् ऋतु = छ ऋतुएँ, बसन्त-हेमन्त-ग्रीष्म-वर्षा-शिशिर-शरद्। कुसुमित = फूले हुए। कानन = वन। पद-संचार = टहलना। विम्बित = परछाईं पड़ती हुई।

उस अनन्त पथ से करुणा की धारा।
हैं करुणा-रस से पुलकित आँखें;
देखो तो भीगीं मन मधुकर की पाखें
रसावेश में निकला जो गुंजार
वह और न था कुछ, था बस हाहाकर।
करुणा की सरिता के मलिन पुलिन पर,
टूटी हुई कुटी का मौन बढ़ाकर
छिन्न हुए भीगे आँचल में मन को—
रूखे सूखे अधर-त्रस्त चितवन को
दुनियाँ की नजरों से दूर बचा कर
वह रोती अस्फुट स्वर में;
सुनता है आकाश धीर निश्चल-समीर—
सरिता की वे लहरें भी ठहर ठहर कर।

(क्या गाऊँ)

क्या गाऊँ ? माँ ! क्या गाऊँ ?
गूँज रही हैं जहाँ राग रागिनियाँ
गाती हैं किन्नरियाँ कितनी परियाँ
कितनी पंचदशी कामिनियाँ,
वहाँ एक यह लेकर वीणा दीन,
तंत्री क्षीण—नहीं, जिसमें कोई झंकार नवीन,
रुद्ध कण्ठ का राग अधूरा कैसे तुझे सुनाऊँ ?
माँ !—क्या गाऊँ ?
छाया है मन्दिर में तेरे यह कितना अनुराग !
चढ़ते हैं चरणों पर कितने फूल,

पाखें = पङ्ख, डैना। सरिता = नदी। पुलिन = तट।

छिन्न = फटा, टुकड़े टुकड़े हुआ। अधर = ओठ। त्रस्त = डरी हुई।
किन्नरियाँ = स्वर्ग की स्त्रियाँ।

मृदुदल, सरस-पराग।
गन्ध-मोद-मद पीकर मन्द समीर
शिथिल चरण जब कभी बढ़ाती आती,
सजे हुए उसके बजते अधीर नूपुर-मंजीर,
कहाँ एक निर्गन्ध कुसुम उपहार !!
नहीं कहीं जिसके पराग-संचार-सुरभि-परिवार !!
कैसे भला चढ़ाऊँ ?
माँ ! क्या गाऊँ ?

पराग = पुष्प-धूल । गन्ध-मोद-मद = सुगन्धि की प्रसन्नता की शराब । समीर = हवा । शिथिल = थके हुए । नूपुर-मंजीर = पैरों का आभूषण । पराग-संचार = फैलती हुई सुगन्ध । सुरभि = सुवास ।

पं० सुमित्रानन्दन पन्त

(१)

स्नेह चाहिए सत्य, सरल !
कैसा ऊँचा नीचा पथ है
माँ ! उस सरिता का अविरल
तेरे गीतों को वह जिसमें
गाती है टल् टल् छल् छल् ।
मैं भी उससे गीत सीखने
आज गयी थी उसके पास
उसके कैसे मृदुल भाव हैं ?
उज्वल तन, मन भी उज्वल !
कितने छन्दों में लहरा कर
गाती है वह तेरे गीत ?
एक भाव से अपने सुख-दुख
तुझे सुनाती है कल् कल् ?
माँ ! उसको किसने बतलाया
उस अनन्त का पथ अज्ञात ?
वह न कभी पीछे फिरती है
कैसा होगा उसका बल ?
एक ग्रन्थि भी नहीं पड़ी है
उसके सरल मृदुल उर में,
उसका कैसा कर्मभोग है,
वह चंचल है, या अविचल ?

सरिता = नदी । अविरल = निरन्तर । मृदुल = कोमल । ग्रन्थि = गाँठ । उर = हृदय । अविचल = स्थिर ।

(२)

इस पीपल के तरु के नीचे
किसे खोजते हो खद्योत !
जहाँ मलिनता विचर रही है,
जहाँ शून्यता का है स्रोत।

सदन लौटता हुआ प्रवासी
तप्त-अश्रु-जल-अंजलि दे,
पूत कर गया था जिस तरु को
सकल स्वार्थ की निज बलि दे।

क्षीण ज्योति में निज, किसका धन
ढूँढ़ रहे हो कर तम भङ्ग ?
किस अज्ञाता के जीवन को
ज्योतित हो कर रहे, पतंग ?

उस निर्दोषा का क्या जिसकी
वायु-भक्षिणी वेणी में,
पड़कर तड़पा हाय ! प्रवासी
लुटे हुओं की श्रेणी में !

किन्तु शलभवर ! उसे न छेड़ो
सोने दो उसको उस पार,

तरु = वृक्ष, पेड़। खोजते हो = ढूँढ़ते हो। खद्योत = जुगनू। मलिनता = मैलापन। सदन = घर। प्रवासी = विदेश गया हुआ। तप्त अश्रुजल अंजलि = गरम आँसुओं की अंजलि। पूत = पवित्र। ज्योति = प्रकाश। तम-भङ्ग = अँधेरा दूर कर के। ज्योतित = प्रकाशित। पतंग = कीड़ा, जुगनू। वायुभक्षिणी = हवा पीने वाली। वेणी = चोटी। श्रेणी = समूह, क़तार।

वहीं स्वप्न में पा लेगी वह
अपने प्रियतम का उपहार ।
जब जीवन के स्रोत सम्मिलित
हो जाते हैं किसी प्रकार ।
उन्हें नहीं तब बिछुड़ा सकता
सखे ! स्वयं तारक करतार ॥

पं० रामनरेश त्रिपाठी

(अन्वेषण)

मैं ढूँढ़ता तुझे था जब कुंज और बन में।
तू खोजता मुझे था तब दीन के वतन में॥
    तू आह बन किसीकी मुझको पुकारता था।
    मैं था तुझे बुलाता, संगीत में, भजन में॥
मेरे लिये खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में॥
    बनकर किसी के आँसू मेरे लिए बहा तू।
    मैं देखता तुझे था माशूक के बदन में।
दुख में रुला रुलाकर तू ने मुझे चिताया।
मैं मस्त हो रहा था तब, हाय, अंजुमन में॥
    बाजे बजा बजाकर मैं था तुझे रिझाता।
    तब तू लगा हुआ था, पतितों के संगठन में॥
मैं था विरक्त तुझसे जगकी अनित्यता पर।
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में॥
    तू बीच में खड़ा था बेबस गिरे हुओं के।
    मैं स्वर्ग देखता था! झुकता कहाँ चरन में॥
तू ने दिया अनेकों अवसर न मिल सका मैं।
तू कर्म में मगन था मैं व्यस्त था कथन में॥

वतन = घर। चमन = फुलवारी, बगीचा। माशूक = प्रेमी। चिताया = चेतावनी दी। अंजुमन = सम्मिलन। अनित्यता = नश्वरता, अस्थिरता। उत्थान = उत्कर्ष, उन्नति। पतन = अवनति, अधोगति।

हरिचन्द्र और ध्रुव ने कुछ और ही बताया।
मैं तो समझ रहा था तेरा प्रताप धन में॥
मैं सोचता तुझे था रावण की लालसा में।
पर था दधीच के तू परमार्थरूप तन में॥
तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था फ़रहाद-कोहकन में॥
क्रीसस की हाय में था करता विनोद तू ही।
तू ही विहँस रहा था महमूद के रुदन में॥
प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना।
तू ही मचल रहा था मंसूर की रटन में॥
कैसे तुझे मिलूँगा जब भेद इस क़दर है।
हैरान होकर भगवन् आया हूँ मैं सरन में॥
तू रूप है किरन में, सौन्दर्य है सुमन में।
तू प्राण है पवन में, विस्तार है गगन में॥
तू ज्ञान हिन्दुओं में, ईमान मुसलिमों में।
विश्वास क्रिश्चियन में, तू सत्य है सुजन में॥
हे दीनबन्धु ऐसी प्रतिभा प्रदान कर तू।
देखूँ तुझे दृगों में, मन में तथा वचन में॥
कठनाइयाँ दुखों का इतिहास ही सुधन है।
मुझको समर्थ कर तू बस कष्ट के सहन में॥
दुख में न हार मानूँ, सुख में तुझे न भूलूँ।
ऐसा प्रभाव भर दे, मेरे अधीर मन में॥

(कहानी)

आँख मूँदिए तो निज घर की मिलेगी राह
आँख खोलते ही जग स्वप्न है विरह का।

फरहाद-कोहकन = फरहाद के द्वारा पहाड़ से निकाली हुई नहर। सही = असली। सुमन = फूल। विस्तार = फैलाव। गगन = आसमान।

मन खोइये तो कुछ पाइये अनोखा धन
हानि में है लाभ यह अजब तरह का ॥
आँख लगते ही फिर आँख लगती नहीं
सुख है विचित्र इस घर के कलह का।
काल की कही हुई कहानी है जगत यह
मनुज इसी में रहता है नित्य बहका ॥

दृग = आँख।

आँख लगते ही = प्रेम होते ही। आँख लगती ही नहीं = नींद नहीं आती। बहका = भूला हुआ।

गोपालशरण सिंह

(चन्द्र खिलौना)

देख पूर्ण चन्द्रमा को मचल गया है शिशु
लूँगा मैं खिलौना यह मुझे अतिभाया है।
माता ने अनेक भाँति उसे समझाया पर
एक भी न माना और ऊधम मचाया है॥
निज चन्द्रमुख का रुचिर प्रतिविम्ब तब
दिखाकर दर्पण में उसे बहलाया है।
हँसकर कौतुक से बोली चारु चन्द्रमुखी.
ले तू अब चन्द्र, वह इसमें समाया है॥
देख आरसी में परछाईं पूर्ण चन्द्रमा की
शिशु ने समोद निज हाथ को बढ़ाया है।
उसी क्षण चन्द्रबदनी के मुखचन्द्र का भी
देख पड़ा वहाँ प्रतिविम्ब मन भाया है॥
जान पड़ता है उन दोनों को विलोक कर
एक ही समान उन्हें विधि ने बनाया है।
लूँ मैं किसे और किसे छोड़ूँ हीन मानकर
इस असमंजस में वह घबराया है॥

(अज्ञान)

पान मैं न खाती कभी तो भी ये अधर मेरे
लाल लाल होते जारहे हैं क्यों प्रवाल से ?

मचलना = हठ, ज़िद करना। चन्द्रमुख = मुँह रूपी चन्द्रमा। रुचिर = सुन्दर। प्रतिविम्ब = परछाईं। आरसी = दर्पण, आइना। हीन = निकृष्ट, नीचा। असमंजस = सोचविचार। अधर = ओठ। प्रवाल = मूँगा।

बढ़ गये सत्य ही क्या मेरे ये विलोचन हैं
लगते न जाने क्यों वे मुझको विशाल से।
ज़ोर ज़ोर मुझसे चला है क्यों न जाता अब
सीख-सी रही हूँ मन्द चाल मैं मराल से।
सजनी भला क्यों मुझे यह गुड़ियों का खेल
खेलना न नेक भी है भाता कुछ काल से ?

विलोचन = आँखें। विशाल = बड़े। मराल = हंस। नेक = ज़रा।
भाता = अच्छा लगता। काल = समय।

बेटी को विदा

प्यारी बहिन, सौंपती हूँ मैं अपना तुम्हें खज़ाना।
है इसपर अधिकार तुम्हारे बेटे का मनमाना॥
रक्त, माँस, हड्डी, तन मेरा है यह बेटी प्यारी।
करो इसे स्वीकार, हुई यह अब सब भाँति तुम्हारी॥१॥

पूजे कई देवता हमने तब इसको है पाया।
प्राण समान पालकर इसको इतना बड़ा बनाया॥
आत्माही यह आज हमारी हमसे बिछुड़ रही है।
समझाती हूँ जी को तो भी धरता धीर नहीं है॥२॥

बहिन, ढिठाई माता की तुम मन में नेक न धरियो।
इस कोमल बिरवा की रक्षा बड़े चाव से करियो॥
है यह नम्र मेमने से भी, भीरु मृगी से बढ़कर।
कड़ी बात या चितवन से यह कँप जाती है थर थर॥३॥

है गँवार यह भोली, इसने नहीं शिष्टता जानी।
तिस पर भी गुरुजन की आज्ञा बड़े प्रेम से मानी॥
साँचे में तुम इसे ढालियो कभी न यह तड़केगी।
बहिन सिखाने से चतुराई बेटी सीख सकेगी॥४॥

यह गुड़िया, यह लक्ष्मी अपनी, जीवन मूल दुलारी।
हृदय थाम कर करती हूँ मैं अब आँखों से न्यारी॥
माता-नेह सोच तुम मन में दुख मेरा अनुमानो।
ममता छिपती नहीं छिपाए बहिन सत्य यह जानो॥५॥

बिछुड़ रही है = अलग हो रही है। बिरवा = पौधा। मेमना = बकरी का बच्चा। भीरु = डरपोक। शिष्टता = सभ्यता, शिष्टाचार।

इसका रूप निहार दिव्य मैं पल पल सुख पाती थी।
गान समान सुरीली बोली इसकी मनभाती थी॥
बहिन तुम्हें भी ये सब बातें जान पड़ेंगी आगे।
अपने नैन रखोगी इस पर जब तुम भी अनुरागे॥६॥

पं० कामता प्रसाद गुरु

अनुरागे = प्रेम से युक्त।

अङ्गद-रावण संवाद

मम निवेदन है कुछ आपसे, सुन उसे उर में धर लीजिए।
ग्रहण है करता जिस युक्ति से, मधुप सारस-सार सहर्ष हो॥
जनकजा रघुनायक हाथ में, तुरत जाकर अर्पण कीजिए!
परवधूजन से रहते सदा, अलग सन्तत सन्त तमीचर!
कुशल से रहना यदि है तुम्हें, दनुज तो फिर गर्व न कीजिए।
शरण में गिरिए रघुनाथ के, निबल के बल केवल राम हैं॥
दुखद है तुमको जनकात्मजा, तुरत दूर उसे कर दीजिए।
सुखद हो सकती न उलूक को, नय-विशारद! शारद-चन्द्रिका॥
बहुत बार हुए विजयी सही, पर नहीं रहते दिन एक से।
सँभल के रहिए, अब आपकी, ग्रहदशा न दशानन! है भली॥
स्वकुल की करिए शुभ कामना, सपदि युक्ति वही नृप! सोचिए.
न अब भी जिसमें करना पड़े, कठिन संगर सङ्ग रमेश के॥
स्वमन को वश में रखिए सदा, अनयसे परवस्तु न लीजिए।
नृप कभी सुखदायक है नहीं, सुत, रसा, धन, साधन के बिना॥
समय है अनमोल कुकर्म में, तुम विनष्ट करो उसको नहीं।
दनुज! है जग में सुखदायिनी, नियमहीन मही न महीप को॥

पं० रामचरित उपाध्याय।

मधुप = भौंरा। सारस = इस नाम का एक पक्षी। सार = रस, तत्व। सन्तत = हमेशा। सन्त = भले आदमी। तमीचर = राक्षस, रावण। दनुज = राक्षस, रावण। नय-विशारद = नीति जानने वाले। शारद-चन्द्रिका = शरद्काल की चाँदनी। सपदि = शीघ्र। संगर = युद्ध। रमेश = रामचन्द्र। अनय = अनीति। रसा = पृथ्वी, भूमि। मही = भूमि। महीप = राजा।

ताजमहल

पत्नि-प्रेम का प्रभा-पुञ्ज-प्रासाद ।
हे भारत के विस्मयकर आह्लाद ॥
लखकर तेरा रूप अनूप विशाल ।
हुआ अतीव विचित्र हृदय का हाल ॥
स्थपति-शिल्प-सौंदर्य-सुरुचि का सद्म ।
प्रेम-पूर्ण पत्नि प्रियता का पद्म ॥
भूतल का प्रस्तर खनि-मणि-भण्डार ।
नारी-कुल के आदर का आगार ॥
विस्मय के रत्नाकर का आदर्श ।
पत्नीव्रती नृपति के हियका हर्ष ॥
'शाहजहाँ' के शासन का उत्कर्ष ।
जय जय जय तत्कालिक भारतवर्ष ॥
ताज-महल ! तू महलों का सिरताज ।
सप्ताश्चर्यों का तू है नृपराज ॥

पं० लोचन प्रसाद पाण्डेय ।

प्रभापुञ्ज = दीप्तिमान । प्रासाद = महल । विस्मयकर = आश्चर्य-जनक । आह्लाद = प्रसन्नता । स्थपति = बढ़ई । सद्म = स्थान । पद्म = कमल । प्रस्तर = पत्थर । खनि = खान । विस्मय = आश्चर्य । रत्नाकर = समुद्र । सप्ताश्चर्य = दुनियाँ की सात आश्चर्यजनक वस्तुएँ ।

वन-विहंगम

बन-बीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में, एक कपोत-कपोती कहीं।
दिन रात न एक को दूसरा छोड़ता, ऐसे हिले-मिले दोनों वहीं
बढ़ने लगा नित्य नया नया नेह, नई नई कामना होती रहीं।
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं॥
रहता था कबूतर मुग्ध सदा अनुराग के राग में मस्त हुआ।
करती थी कपोती कभी यदि मान, मनाता था पास जा व्यस्त हुआ।
जब जो कुछ चाहा कबूतरी ने, उतना वह वैसे समस्त हुआ।
इस भाँति परस्पर पक्षियों में भी, प्रतीति से प्रेम प्रशस्त हुआ॥
दिन एक बड़ा ही मनोहर था छवि छाई बसन्त की कानन में।
सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी जड़ चेतन के तन में मन में॥
निकले थे कपोत कपोती कहीं पड़े झुण्ड में घूम रहे बन में।
पहुँचा यहाँ घोंसले पास शिकारी शिकार की ताक में निर्जन में॥
उस निर्दय ने उसी पेड़ के पास बिछा दिया जाल को कौशल से।
वहाँ देख के अन्न के दाने पड़े चले बच्चे अभिज्ञ जो थे छल से॥
नहीं जानते थे कि यहीं पर है कहीं दुष्ट भिड़ा पड़ा भूतल से।
बस फाँस के बाँस के बन्धन में कर देगा हलाल हमें बल से॥

कपोत = कबूतर। नेह = स्नेह, प्रेम। प्रयोजन = अभिप्राय। अनुराग = प्रेम। मान = अभिमान। व्यस्त = चंचल। प्रतीत = विश्वास। प्रशस्त = बढ़ा, फैला।

कानन = वन, जंगल। जड़ = निर्जीव। चेतन = प्राणवान्। निर्जन = अकेले। कौशल = चतुराई। अभिज्ञ = यह प्रयोग यहाँ अशुद्ध है। इसका अर्थ है जानकार कवि ने अनभिज्ञ (अनजान) के अर्थ में इसका प्रयोग किया है। भिड़ा = लेटा। भूतल = जमीन। हलाल = मार डालना।

जब बच्चे फँसे उस जाल में जा तब वे घबड़ा उठे बन्धन में।
इतने में कबूतरी आई वहाँ दशा देख के व्याकुल हो मन में॥
कहने लगी हाय हुआ यह क्या सुत मेरे हलाल हुए बन में।
अब जाल में जाके मिलूँ इनसे सुख ही क्या रहा इस जीवन में॥
उस जाल में जाके बहेलिये के ममता से कबूतरी आप गिरी।
इतने में कपोत भी आया वहाँ उस घोंसले में थी विपत्ति निरी॥
लखते ही अँधेरा सा आगे हुआ घटना की घटा वह घोर घिरी।
नयनों से अचानक बूँद गिरे चेहरे पर शोक की स्याही फिरी॥
यहाँ सोचता था यों कपोत, वहाँ चिड़ीमार ने मार निशाना लिया।
गिर लोट गया धरती पर पत्ती बहेलिये ने मनमाना किया॥
पल में कुल का कुल, कालकराल ने भूत भविष्य में भेज दिया।
क्षण भंगुर जीवन की गति का यह एक निदर्शन है बढ़िया॥
हर एक मनुष्य फँसा जो ममत्व में तत्व महत्व को भूलता है।
पर अन्त को ऐसे अचानक अन्तक अस्त्र अवश्य ही हूलता है॥
उसके सिर पे खुला खड्ग सदा बँधा धागे में धार से झूलता है।
वह जाने बिना बिधि की गति को अपनी ही गढ़न्त में भूलता है॥
प्रिय पाठक आपतो विज्ञ ही हैं, फिर आपको क्या उपदेश करें।
सिर पै शर ताने बहेलिया काल खड़ा हुआ है यह ध्यान धरें॥
दशा अन्त को होनी कपोत की ऐसी परन्तु न आप ज़रा भी डरें।
निज धर्म के कर्म सदैव करें कुछ चिन्ह यहाँ पर छोड़ मरें॥

श्री रूपनारायण पाण्डेय।

सुत = बच्चे। बहेलिया = शिकारी। निरी = केवल, सिर्फ। घटा = बादल, मेघ। नयनों से = आँखों से।

भूत = बीता हुआ समय। भविष्य = आने वाला समय। क्षण-भंगुर = नश्वर, अस्थायी। निदर्शन = दृश्य, तस्वीर। तत्व = सच्ची बात। महत्व = बड़प्पन। खड्ग = तलवार। धागे = डोरे। विधि = विधाता, स्रष्टा। गढ़न्त = गढ़नेवाला, उत्पादक।

मैं

(१)

जाना चाहा किधर, विश्वगति मुझे कहाँ पर ले आई ?
    विधि ऐसा प्रतिकूल हुआ, कुछ बात न बिगड़ी बन पाई ॥
पता नहीं मेरे जीवन की नाव किधर बहती जाती ?
    "है तुमसे बलवान विधाता"—यह मुझसे कहती जाती ॥

(२)

है मुझसे बलवान विधाता कहता है मेरा जीवन।
    नहीं मानता लाख मनाया पर मेरा अभिमानी मन ॥
कभी न विधि को शीश झुकाया मैंने लाखों दुख सहकर।
    'जो चाहे तू कर सकता है'—कभी न बैठा यों कहकर ॥

(३)

क्या हूँ मैं आख़िर दुनियाँ में ? क्या हूँगा निजत्व खोकर ?
    रहना है क्या मुझे किसी के कर की कठपुतली होकर ?
क्या हूँ सो तो नहीं जानता, पर कुछ हूँ इतना है ज्ञान।
    'कुछ' की भी सत्ता होती है, सत्ता का होता अभिमान ॥

(४)

कभी न वह पाएगी जीवन की नौका स्वतंत्र होकर।
    ले जाऊँगा उसे लक्ष्य पर मैं अपना सर्वस खोकर ॥
आफ़त के तूफ़ान उठें, पर होगी गति अपने कर में।
    जिस दिन कर से छूट बहेगी ले डूबूँगा सागर में ॥

विश्वगति = दुनियाँ की रफ्तार। विधि = विधाता, ब्रह्मा। शीश = सिर। निजत्व = अपनापन। कर = हाथ। सत्ता = अस्तित्व, रूप। लक्ष्य = निर्दिष्ट स्थान। गति = चाल, रफ़्तार।

(५)

हे अदृश्य की महाशक्तियो, मत करना मेरा उद्धार।
मुझे देखना है इस 'मैं' की अन्तिम सीमा का विस्तार॥
लाया हूँ मैं इस दुनियाँ में 'मैं' की सत्ता का उन्माद।
पता नहीं क्या है अदृश्य में 'मैं' के मिट जाने के बाद॥

श्री विक्रमादित्यसिंह, बी० ए० 'विक्रम'

अदृश्य = न दीख पड़नेवाला। सीमा = फैलाव, हद्द। उन्माद = पागलपन।

शव

(१)

इस धूलि में धरा क्या, जिसमें पड़े लपेटे ?
मेरे सरल बटोही।
पथ-ताप से भरा क्या, किस हेतु मौन लेटे ?
अनजान देश-द्रोही ।

(२)

ममता कहाँ चली है, यौवन कहाँ टहलता,
दृग बन्द है तुम्हारे ।
सूखी कुसुम-कली है, भौंरा नहीं मचलता,
उत्साह लुप्त सारे ।

(३)

भर कौन खेद मन में, किस सिन्धु-मध्य भोगी,
तरणी डुबा रहे हो।
कैसे सघन विजन में, सन्यास ले वियोगी।
जीवन डरा रहे हो।

(४)

मुरझा रही तुम्हारी, ऐश्वर्य-बेलि बोई,
प्याली शराब-हीना ।
सुरभित कनेर-क्यारी, बैठा उजाड़ कोई,
लूटा नया नगीना।

बटोही = राहगीर, पथिक । ताप = गर्मी । दृग = आँखें । कुसुम = फूल । लुप्त = लोप होना, नष्ट होना । खेद = कष्ट । सिन्धु-मध्य = समुद्र में । भोगी = विलासी, आराम तलब । तरणी = नाव । सघन = घना । विजन = जनहीन, वन । कनेर = पुष्प विशेष ।

(५)

बहती न गीत-लहरी, स्वर हैं अपूर्ण मन के,
चंचल कहां इशारे।
कैसी अशान्ति गहरी, क्यों तुम बने गगन के,
विक्षिप्त तुच्छ तारे।

(६)

उस पार से बुलाती, गोधूलि पंचरंगी,
किस सोच में पड़े हो।
बुलबुल बिहाग गाती, सोता मयूर संगी,
किस तीर तुम खड़े हो।

(७)

चुनता न हंस मोती, कादम्बरी मलीना,
भू रक्त-रंजिता है।
उड़ती नहीं कपोती, वह आज पङ्ख-हीना,
दुर्भाग्य-संचिता है।

(८)

कर टूक-टूक जीवन, तरुणी नवीन बाला,
मूर्च्छित उधर पड़ी है।
छूलो अछूत ! दामन, भर दो सुहाग प्याला,
यम-यातना कड़ी है।

(९)

माँ का उदास क्रन्दन, सुनते नहीं बधिर ! क्यों,
आखें अषाढ़-सी हैं।

कादम्बरी = शराब। रंजिता = रँगी हुई। दामन = आँचल।
क्रन्दन = रोना।

कोइ न सूझते फ़न, घेरे पड़ा तिमिर क्यों ?
घड़ियाँ विपत्ति की हैं।

(१०)

पागल पिता बिलखता, ज्वाला धधक धधकती,
है मौत का तमाशा।
बेटा उधर तड़पता, बेटी इधर सिसकती,
साथिन बनी निराशा।

(११)

तुम रम रहे जहाँ हो, उस देश से न कोई,
क्या भूल लौटता है।
कोकिल कहो कहाँ हो, भव-निधि अमूल्य खोई,
हाँ ख़ून खौलता है।

(१२)

झूठा बना स्व-बाना, अव्यर्थ सिसकियों से,
दिल विश्व का दलेंगे।
कफ़नी ओढ़ा पुरानी, कस अंग रस्सियों से,
ले घाट पर चलेंगे।

(१३)

रोकर कुटिल पड़ोसी, मृदु फूल-सी तुम्हारी,
यह देह फूँक देंगे।
झुक जायँगे सदोषी, क्या मार दम कटारी,
अनुताप में मरेंगे।

श्री गुलाबरत्न बाजपेयी "गुलाब"।

फन = तरकीब, उपाय। तिमिर = अन्धकार। भवनिधि = दुनियाँ का धन अथवा दुनियाँ रूपी धन। स्व-बाना = अपना वेश। दलेंगे = कुचल देंगे।

अनन्त की ओर

आशाओं के स्वप्न क्षणिक जीवन के विषम विषाद विदा।
भावों के सुख-स्वर्ग, कल्पना के सुन्दर प्रासाद विदा।
विदा "अहं" की छलमय छाया, भ्रान्ति-पूर्ण उन्मत्त अशान्ति।
उद्गारों के वेग, महत्वाकांक्षा के उन्माद विदा॥
माया और ममत्व, वासना के मतवाले राग विदा।
विश्व कुसुम के पागल करनेवाले मधुर-पराग विदा॥
विदा वेदना और हृदय की करुण-कथा के उपसंहार।
परिधि-रहित परिताप और उस मौन-व्यथा की आग विदा॥
लोलुप तृष्णा की उतावली-सी उन्मत्त-उमंग विदा।
यौवन-मद के दीवानेपन की वह तरल-तरङ्ग विदा॥
विदा सुखों की विस्तृत लहरों की उच्छृङ्खल उच्च-उठान,
और नाश के भीषण-स्वर की ध्वनि-प्रतिध्वनि के व्यंग्य विदा॥

श्री भगवतीचरण वर्मा

क्षणिक = क्षणभंगुर, अस्थायी। विषम = दारुण, असमान। विषाद = उदासी। प्रासाद = महल। भ्रान्तिपूर्ण = भ्रम से भरी हुई। उन्मत्त = पागल। उन्माद = पागलपन। पराग = पुष्प-धूल। उपसंहार = अन्तिम भाग। परिधि = सीमा। परिताप = पश्चात्ताप, सोच। लोलुप = लालची। तृष्णा = प्यास, आकांक्षा। तरल = सजल। तरङ्ग = हिलोर। उच्छृङ्खला = निरंकुश। प्रतिध्वनि = प्रतिशब्द, आवाज़ से उत्पन्न होनेवाली आवाज़।

भिखारिणी

है जीवन की गली-गली में
फिरने वाली भिखारिनी,
यहाँ-वहाँ जाकर न माँग तू
आशा-वन की विहारिनी।
ये चुम्बन के फूल-और ये—
तेरे कलुषित होठ यहाँ—
कैसे खिलें! बता दे, हिय में
लगी लगन की आग जहाँ?
त्याग कहाँ? वैराग्य कहाँ?
हाँ, तेरा वह सौभाग्य कहाँ?
राग यहाँ, अनुराग यहाँ,
है तेरा यह दुर्भाग्य यहाँ।
होठ नहीं तो, हाथ सही,
यदि हाथ नहीं तो चरण सही,
चरण नहीं तो, हे निष्ठुर! उस
नूपुर का आभरण सही,
कुछ न सही तो उन आँखों से
आश्वासन की शरण सही
प्राण-दान के मिस इस टूटे—
जीवन का संवरण सही॥

—पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

विहारिनी = विहार करने, खेलने वाली। कलुषित = पापी, निन्दित। लगन = अनुराग। नूपुर = पैरों में पहनने का एक गहना। आभरण = पहनना, पहनावा। आश्वासन = दिलासा। मिस = बहाने से। संवरण = समेटना।

अज्ञात

कौन तू उर-निकुञ्ज में बैठ, मृदुल स्वर में गा गा यह गीत—
जगाता निष्ठुरता से छेड़, बता क्यों मेरा सुप्त अतीत ?
थिरकने चंचल गति से आह ! लगी हृत्कम्पन पर तव तान।
बिकलता से चरणों पर झुका,—रहा कर क्यों मेरा बलिदान ?
देख अपने ही भीतर पैठ, कौन मैं ?—कह इतनी ही बात।
बात-हत तरु-सा कर विच्छिन्न मुझे क्यों चला कहाँ "अज्ञात"।

प० जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज'

सुप्त = सोया हुआ। अतीत = बीता समय। हृत्कम्पन = हृदय की धड़कन। वातहत = हवा से उखाड़ा हुआ। तरु = पेड़। विच्छिन्न = टूटा हुआ।

आमंत्रण

दृग के प्रतिरूप सरोज हमारे उन्हें जग ज्योति जगाती जहाँ;
जल बीच कलंब करंबित कूल से दूर छटा छहराती जहाँ;
घन अंजन वर्ण खड़े तृणताल की झाईं पड़ी दरसाती जहाँ;
बिखरे बक के निखरे सितपंख विलोक बकी बिक जाती जहाँ;
द्रुम-अंकित, दूब-भरी, जलखंड-जड़ी धरती छबि छाती जहाँ;
हर हीरक-हेम-मरक्त-प्रभा, ढल चंद्रकला है चढ़ाती जहाँ;
हँसती मृदु मूर्ति कलाधर की कुमुदों के कलाप खिलाती जहाँ;
घन-चित्रित अंबर अंक धरे सुषमा सरसी सरसाती जहाँ;
निधि खोल किसानों के धूल सने श्रम का फल भूमि बिछाती जहाँ;
चुन के कुछ चोंच चला करके चिड़िया निज भाग बँटाती जहाँ;
कगरों पर काँस की फैली हुई धवली अवली लहराती जहाँ;
मिल गोपों की टोली कछार के बीच है गाती औ गाय चराती जहाँ;
जननी धरणी निज अंक लिए बहु कीट पतंग खेलाती जहाँ;
ममता से भरी हरी बाँह की छाँह पसार के नीड़ बसाती जहाँ;

प्रतिरूप = समान। सरोज = कमल। कदम्ब = एक पुष्प विशेष। करम्बित = अंकुरित। कूल = किनारा। अंजन वर्ण = अत्यन्त काले। ताल = तालाब। झाईं = परछाईं। निखरे = खिले हुए। सित = सफेद। द्रुम = वृक्ष। हर = हरण करके, छीन कर। हीरक = हीरा। हेम = सोना। मरक्त = मरकत। कलाधर = चन्द्रमा। कुमुद = कमलिनी। कलाप = समूह। घन-चित्रित = खूब गहरा खिँचा हुआ। अम्बर = आकाश। अङ्क = गोद। सुषमा = अत्यन्त शोभा। सरसी = नदी। कगरों = किनारों। धवली = सफेद। अवली = समूह। कछार = तट। धरणी = भूमि। नीड़ = घोंसला।

मृदुबाणी मनोहर वर्ण अनेक लगाकर पंख उड़ाती जहाँ;
उजली कँकरीली तटी में धँसी तनु धार लटी बलखाती जहाँ;
दलराशि उठी खरे आतप में हिल चंचल चौंध मचाती जहाँ;
उस एक हरे रंग में हलकी गहरी लहरी पड़ जाती जहाँ;
कल कर्बुरता नभ की प्रतिबिम्बित खंजन में मन भाती जहाँ;
कविता वह ! हाथ उठाए हुए, चलिए कविवृन्द बुलाती वहाँ।

पं० रामचन्द्र शुक्ल

तनुधार = शरीर धारण कर के। दलराशि = अंकुर समूह। खरे = तीखे। आतप = धूप। चौंध = चमक। लहरी = रेखा। कर्बुरता = अनेक रंग। नभ = आकाश। प्रतिबिम्बित = परछाईं पड़ती हुई। खंजन = एक पक्षी विशेष।

उद्‌गार

मेरे जीवन की लघु-तरणी !
आँखों के पानी में तर जा !!
मेरे उर का छिपा ख़ज़ाना,
अहंकार का भाव पुराना,
बना आज तू मुझे दिवाना,
तप्त-स्वेद-बूँदों में ढर जा !
मेरे नयनों की चिर-आशा,
प्रेम-पूर्ण-सौन्दर्य-पिपासा,
मत कर नाहक और तमाशा,
आ, मेरी आहों में भर जा !
मृदुल मनोरथ तरु में फूला,
फूल रङ्ग में अपने भूला,
भूल चुका बस, जो कुछ भूला,
अब अपनी डाली से झर जा !
चढ़ी हृदय में चिता कराला,
ऊपर नभ तक उठती ज्वाला,
मरण-दुःख ! ले मुक्ता-माला,
गिर कर अब तू उसमें मर जा !

तरणी = नौका । तर जा = तैर जा, उतरा जा । दिवाना = पागल । तप्त = गरम । स्वेद = पसीना । ढर जा = ढुलक जा । चिर = पुरानी । पिपासा = प्यास । नाहक = व्यर्थ । मृदुल = कोमल । तरु = वृक्ष । कराला = भयङ्कर । नभ = आकाश ।

ऐ मेरे प्राणों के प्यारे !
इन अधीर आँखों के तारे !
बहुत हुआ मत अधिक सता रे !
बातें कुछ भी तो अब कर जा !
मानस-भवन पड़ा है सूना,
तमोधाम का बना नमूना,
कर उसमें प्रकाश अब दूना,
मेरी उग्र वेदना हर जा !
मोहित तुझको करने वाली,
नहीं आज वह मुख की लाली,
हृदय-यंत्र यह रक्खा खाली,
अब नूतन-सुर इसमें भर जा !

पं० मुकुटधर पाण्डेय

मानस = हृदय । तमोधाम = अँधेरा लोक ।

किरण

बे जाने, न जाने किस द्वार से
कौन से प्रकार से,
मेरे गृह कक्ष में,
—दुस्तर-तिमिर-दुर्ग-दुर्गम-विपक्ष में—
उज्वल प्रभामयी
एकाएक कोमल किरण एक आ गई।
बीच से अँधेरे के हुए दो टूक;
विस्मय-विमुग्ध मूक
मेरा मन
पा गया अनन्त धन।
रश्मि वह सूक्ष्माकार
कज्जल के कूट में उसी प्रकार,
जौलौं रही उज्वल बनी रही;
ओठों पर हास रहा हँसता हुआ वही।
किन्तु उसी हास-सी,
वीचि के विलास-सी,
विद्युत प्रवाहमयी
जैसी वह आयी बस वैसीही चली गयी।

गृहकक्ष = घर। दुस्तर = कठिन, घोर। तिमिर = अन्धकार। दुर्गम = अगम, न जाने योग्य। विस्मय = आश्चर्य। मूक = मौन। रश्मि = किरण। सूक्ष्माकार = पतली। कज्जल के कूट = अन्धकार का पर्वत, घोर अँधेरा। वीचि = तरङ्ग, लहर। विलास = क्रीड़ा, खेल। विद्युत = बिजली।

एक ही निमेष में
मेरे मरु देश में
आकर सुधा की धार अमृत पिला गई,
और फिर देखते ही देखते बिला गई।
× × ×
कोई दिव्य देवी दया-दीप लिये जाती थी;
मार्ग में सुवर्ण-रश्मि-राशि बरसाती थी!
उनमें से यह एक रश्मि आ पड़ी थी यहाँ,
किन्तु वह रहती यहाँ कहाँ,—
मेरा घर सूना था,
अगम अरण्य का नमूना था।
रोकता उसे मैं यहाँ हाय! किस मुख से,
बाँधता उसे मैं किस भाँति भव दुख से?
आई वह, है क्या यही बात कम;
एकही निमेष वह मेरे एक जन्म सम
मेरे मनोदोल पै अनन्त काल झूलेगा;
सुकृति समान मुझको न वह भूलेगा।

श्री सियाराम शरण गुप्त

निमेष = क्षण। मरुदेश = मरुभूमि, जलती हुई भूमि। सुधा = अमृत। बिला गयी = नष्ट हो गयी। रश्मि = किरण।

अरण्य = जङ्गल, वन। भव = संसार। निमेष = क्षण। मनोदोल = मन का झूला। अनन्त काल = अन्तहीन समय। सुकृति = पुण्य।

चोर

आया, वह आया, ऋतुपति-सा, बन-बन में छिपता आया।
आया, वह आया, प्राणों-सा, तन-तन में छिपता आया॥
आया, वह आया, मनोज-सा, मन-मन में छिपता आया।
आया, वह आया, तुझसा ही, जन-जन में छिपता आया॥
नहीं छा गया जीवन-नभ में, घुमड़ मनोहर घन-सा।
अरे! हृदय में चुपके-से आ छिपा कृपण के धन-सा॥

श्री मोहनलाल महतो 'वियोगी'

सुमन

शूल चुभाना मेरा अनुकूल के देख के दैव ने ये गति मेरी।
दण्ड-निकाला दिया वन-देश से, जो कुछ थी हरली पति मेरी॥
छेदा गया क्षत विक्षत हूँ, है 'हितैषी' हुई छवि की क्षति मेरी।
रूप पै फूलै न कोई कभी, यह फूलने ही से हुई गति मेरी॥
खिल अंक में तेरे कलंक ये लूँ, मिल धूल में ठोकरें खाऊँ कहाँ?
ये बहार, ये बाग, ये बल्लरियाँ, ये सुशीतल वायु मैं पाऊँ कहाँ?
कहाँ प्रेमी 'हितैषी' मलिन्द मिलैं, ये किसे रंग रूप दिखाऊँ कहाँ?
निज सौरभ व्यर्थ गँवाऊँ कहाँ, विटपी तुझे छोड़ के जाऊँ कहाँ?

ऋतुपति = बसन्त। तन = शरीर। मनोज = कामदेव। जन = मनुष्य। नभ = आकाश। घुमड़ = घिरकर। घन = बादल। कृपण = कंजूस।

शूल = काँटा। अनुकूल = पक्ष में। दैव = विधाता। पति = इज्जत। क्षत-विक्षत = तोड़ा-मरोड़ा हुआ। क्षति = हानि। अंक = गोद। बल्लरियाँ = लताएँ। मलिन्द = भौंरे। सौरभ = सुगन्ध। विटपी = वृक्ष।

(मछली)

फँस के दुरदैव से मोह के जाल में दुःख के हाथों दली गयी हूँ।
छुरियाँ चलीं छाती पै हैं छलको, ममता से 'हितैषी' मली गयी हूँ॥
पड़के विरहाग्नि में काल कराह में नेह में आह जली हुई हूँ।
छली जाकर एक छली से अली बिना पानी की मैं मछली हुई हूँ॥

(मैं और वह)

बरसैं गईं बीति वियोग में, ध्यान सँयोग का भी नहीं आनते हैं।
फिर व्यर्थ व्यथा उपजाने को लोग कथा क्यों पुरानी बखानते हैं?
अब मित्रता बाकी रही इतनी कि 'हितैषी' नहीं अनजानते हैं।
बस, जानते हैं उनको हम और हमें वह भी पहिचानते हैं॥
न करें यदि नेकी तो क्या? हमको वो मिटाने का तो हठ ठानते हैं।
न 'हितैषी' भलाई की बात करैं पै बुराई तो मेरी बखानते हैं॥
न रही वह मित्रता, शत्रु ही जानके चित्त में तो हमें आनते हैं।
इसी ध्यान में मग्न हूँ मैं कि मुझे कुछ तो अपना वह मानते हैं।

ये गजरे तारोंवाले !

इस सोते संसार बीच, जगकर, सजकर रजनीबाले !
कहाँ बेचने ले जाती हो, ये गजरे तारोंवाले ?
मोल करेगा कौन ? सो रही हैं उत्सुक आँखें सारी।
मत कुम्हलाने दो सूनेपन में अपनी निधियाँ न्यारी॥

दली = नष्ट की गयी, कुचली गयी। नेह = स्नेह और तेल। अली = सखी। व्यथा = कष्ट। उपजाने = उत्पन्न करने। बखानते = वर्णन करते। अन-जानते = अपरिचित। नेकी = भलाई। मिटाने = नष्ट करने। बखानते = वर्णन करते हैं। आनते = लाते हैं।

रजनी-बाले = रात्रिरूपी बालिका। निधियाँ = वैभव, धन। न्यारी = अनमोल।

निर्झर के निर्मल जल में ये गजरे हिला हिला धोना।
लहर हहर कर यदि चूमें तो किंचित विचलित मत होना॥
हो प्रतिविम्ब विचुम्बित, पर हो लहरों ही में लहराना।
"लो मेरे तारों के गजरे" निर्झर स्वर में यह गाना॥
यदि प्रभात तक कोई आकर,
तुमसे हाय! न मोल करे।
तो, फूलों पर ओस रूप में,
बिखरा देना सब गजरे॥

श्री रामकुमार वर्मा "कुमार" एम० ए०

दीप-दान

अब तो उन गलियों में कोई कहता नहीं पुकार-पुकार।
बहुत दूर से आया हूँ मैं, झटपट आकर खोलो द्वार॥
अब तो कानों में पड़ती है नहीं विश्व मोहक झंकार।
टकराकर क्यों टूट गये हैं हाय! विपंची के सब तार?॥
हे अनजान कहाँ भूला तू, खाली है कब से कुटिया।
आ, प्रकाश से भर दे इसको, कहदे—दीपक जला दिया॥

श्री प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त'

निर्झर = झरना। हहर = अधीर होकर। किंचित = कुछ भी। विचलित = डरना, घबराना। प्रतिबिम्ब = परछाईं। विचुम्बित = चूमे जाकर। बिखरा = फैलाना। विपंची = वीणा।

परिशिष्ट

तुलसीदास

(अङ्गद-रावण-संवाद)

कह दसकंठ कवन तैं बंदर । मैं रघुबीर-दूत दस-कंधर ॥
मम जनकहिं तोहि रही मिताई । तव हित कारन आयउँ भाई ॥
उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती । सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती ॥
बर पायउ कीन्हेहु सब काजा । जीतेहु लोकपाल सब राजा ॥
नृप अभिमान मोहवस किंबा । हरि आनेहु सीता जगदंबा ॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा । सब अपराध छमहिं प्रभु तोरा ॥
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी । परिजनसहित संग निजनारी ॥
सादर जनकसुता करि आगे । एहिविधि चलहु सकल भय त्यागे ।
प्रनतपाल रघुवंस-मनि, त्राहि त्राहि अब मोहि ।
आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करहिंगे तोहि ॥
रे कपि पोत न बोल सँभारी । मूढ़ न जानेसि मोहि सुरारी ॥

दसकंठ = रावण । दसकन्धर = रावण । मिताई = मित्रता । तव = तुम्हारे । हितकारन = हित के लिए । पुलस्ति = पुलस्त्य ऋषि । बिरंचि = ब्रह्मा । बहुभाँती = अनेक प्रकार से । नृप = राजा । हरि = हरण करके । जगदम्बा = जगत् की माता । सुभकहा = मेरी कही हुई शुभ बात । छमिहिं = क्षमा करेंगे । तोरा = तुम्हारा । दसन......कुठारी = दाँतों में तिनका पकड़ो और गले पर फरसा रखो, अभिप्राय यह कि रामचन्द्र की महत्ता स्वीकार करके उनके क्षमा प्रार्थी बनो । परिजन = नौकर चाकर । त्यागे = छोड़ कर । प्रनतपाल = झुके हुए की रक्षा करने वाले । आर्त = दीनता से भरे । गिरा = वाणी, बातें । कपिपोत = वानर पुत्र । सँभारी = सँभाल कर, सोच विचार कर । मूढ़ = मूर्ख । सुरारी = देवताओं का शत्रु ।

कहु निज नाम जनक कर भाई । केहि नाते मानिये मिताई ॥
अंगद नाम बालि कर बेटा । तासो कबहु भई होइ भेटा ॥
अंगदवचन सुनत सकुचाना । रहा बालि बानर मैं जाना ॥
अंगद तहीं बालि कर बालक । उपजेहु बंस अनल कुल घालक ॥
गर्भ न गयउ व्यर्थ तुम्ह जायहु । निजमुख तापस दूत कहायहु ॥
अब कहु कुसल बालि कह अहई । बिहँसि वचन तब अंगद कहई ॥
दिन दस गये बालि पह जाई । बूझेहु कुसल सखा उर लाई ।
रामबिरोध कुसल जसि होई । सो सब तोहि सुनाइहि सोई ॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताके । श्री रघुवीर हृदय नहि जाके ॥

(दोहावली)

'मोर मोर' सब कहँ कहसि तू को ? कहु निज नाम ।
कै चुप साधहि सुनि समुझि कै तुलसी जपु राम ॥
हम लखि लखहि हमार लखि, हम हमार के बीच ।
तुलसी अलखहि का लखहि ? राम नाम जपु नीच ॥

जनककर = पिता का । मिताई = मित्रता । भई होइ = हुई होगी । भेटा = मुलाकात । सकुचाना = झेंप गया । तहीं = तूही । वंस = बाँस या कुल । अनल = आग; (तू अपने कुल का नाश करने वाला, बाँस में आग की तरह, उत्पन्न हुआ है ।) गर्भ न गयउ = गर्भ नष्ट क्यों नहीं होगया । जायहु = उत्पन्न हुए । तापस = तपस्वी, भिखारी । अहई = है । कहई = कहता है । दिन दस......उर लाई = दस दिन बीतने पर बालि के पास जाकर—अर्थात् मर कर—और अपने उस मित्र को हृदय से लगाकर उसकी कुशल पूछना । जसि = जैसा । सोई = वही । भेद = विरोध, गुप्त बात । ताके = उसके । जाके = जिसके । मोर = मेरा । को = कौन । कै = या तो । अलखहि = अज्ञेय, न दीख पड़ने वाला ।

रसना साँपिनि बदन बिल, जे न जपहिं हरिनाम ।
तुलसी प्रम न राम सों, ताहि विधाता बाम ॥
रहै न जल भरि पूरि, राम ! सुजस सुनि रावरो ।
तिन आँखिन में धूरि, भरि भरि मूठी मेलिए ॥
साहिब होत सरोष, सेवक को अपराधि सुनि ।
अपने देखे दोष, सपनेहु राम न उर धरेउ ॥
रे मन ! सबसों निरस ह्वै, सरस राम सों होहि ।
भलो सिखावन देत है, निसि दिन तुलसी तोहि ॥
आपु आपने तें अधिक, जेहि प्रिय सीताराम ।
तेहिके पग की पानहीं, तुलसी तनु को चाम ॥
तुलसी परिहरि हरि हरहिं, पाँवर पूजहिं भूत ।
अन्त फजीहति होहिँगे, गनिका केसे पूत ॥
वारि मथे घृत होइ बरु, सिकता तें बरु तेल ।
बिनु हरि भजन न भव तरिय, यह सिद्धान्त अपेल ॥
ज्ञानी तापस सूर कवि, कोविद गुन आगार ।
केहिकै लाग विडंबना, कीन्ह न यहि संसार ।

रसना = जीभ । बदन = शरीर । बिल = छेद । वाम = प्रतिकूल । भरिपूरि = भरा हुआ, पूर्ण । सुजस = ख्याति । रावरो = आपकी । धूरि = धूल । मेलिए = डालिए । सरोष = क्रोधित । उरधरेउ = मन में रक्खा । निरस = उदासीन, विमुख । सिखावन = शिक्षा । पानही = पनही, जूता । तनु = शरीर । चाम = चमड़ा । परिहरि = छोड़-कर । हरिहर = शिव और विष्णु । पाँवर = पामर, नीच । फजीहति = बेइज्जत । गनिका = वेश्या । पूत = पुत्र । बारि = पानी । बरु = बल्कि । सिकता = बालू । भव = संसार । तरिय = तरते हैं । अपेल = निश्चित, तापस = तपस्वी । कोविद = पण्डित । बिडंबना = अटकाव, मुश्किल ।

श्रीमद् बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृग नयनी के नयन सर, को अस लाग न जाहि॥
नीच गुडी ज्यों जानिवो, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि दिये गिर परत महि खैंचत चढ़त अकास॥
बढ़ि प्रतीति गठबंध तें, बड़ो जोग तें छेम।
बड़ो सुसेवा साइँ तें बड़ो नेम ते प्रेम॥

(कवितावली)

तन की दुति स्याम सरोरुह, लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि अनंग की दूरि धरैं॥
दमकैं दँतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल-विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी-मन मंदिर में बिहरैं॥

श्रीमद्=धनका अभिमान। वक्र=टेढ़ा, अभिमानी। वधिर=बहरा। काहि=किसे। मृगनयनी=मृग की सी आँखों वाली, तरुणी स्त्री। नयन सर=नयन बाण, आँखों का तीर। को अस=ऐसा कौन है। जाहि=जिसे।

नीच=अधम। गुडी=पतङ्ग। महि=भूमिपर। खैंचत=खीचने से। अकास=आसमान। प्रतीति=विश्वास। जोग=अप्राप्य को प्राप्त करना। छेम=पाये हुये की रक्षा करना। सुसेवक=भला सेवक। साइँ=स्वामी नेम=ध्यान, व्रत। प्रेम=प्रीति।

दुति=द्युति, शोभा। स्याम सरोरुह=नीलकमल। लोचन=आँखें। कंज=कमल। मंजुलताई=मनोहरता। हरैं=छीन लेते हैं। सोहत=शोभित होते हैं। छवि=शोभा। भूरि=अधिक, विशेष। अनंग=कामदेव। दूरि धरैं=अलग कर देते हैं। दमकैं=प्रकाशित हो रही हैं। दँतियाँ=छोटे छोटे दाँत। दामिनि=बिजली। किलकैं=किलकारी मारते हैं। विहरैं=विहार करें।

निपट निदरि बोले बचन कुठारपानि,
मानि त्रास औनिपन मानों मौनता गही।
रोषे माषे लषन अकनि अनखौहीं बातैं,
तुलसी विनीत बानी बिहँसि ऐसी कही॥
"सुजस तिहारो भरो भुवननि, भृगुनाथ!
प्रगट प्रताप आपु कहो सो कबै सही।
टूट्यो सो न जुरैगो सरासन महेस जू को,
रावरी पिनाक मैं सरीकता कहा रही" ?॥

प्रेम सों पीछे तिरीछे प्रिया ही चितै चितु दै चलै लै चित चोरे।
स्याम सरीर पसेऊ लसै हुलसै तुलसी छवि सो मन मोरे॥
लोचन लोल चलै भृकुटी कलकाम कमानहु सो तृन तोरे।
राजत राम कुरंग के संग निषंग कसे धनु सों सर जोरे॥

निपट = अत्यन्त। निदुरि = निरादर करके। कुठार पानि = परशुराम। त्रास = डर, भय। औनिपन = अवनिप गण; राजा लोग। गही = धारण कर लिया। रोषे = क्रोधित हुए। माषे = ईर्ष्या की। अकनि = देखना, दृष्टि। अनखौहीं = अनखाने, बुरी लगने वाली। विनीत = विनय युक्त। बिहँसि = हँस कर। तिहारो = तुम्हारा। भुवननि = चौदहों भुवनों में। भृगुनाथ = परशुराम। सही = ठीक है। जुरैगो = जुड़ सकेगा। सरासन = धनुष। महेस = शिवजी। रावरी = आपकी। पिनाक = धनुष। सरीकता = हिस्सेदारी। कहा = क्या।

तिरीछे = तिरछे होकर। चितै = देख कर। पसेऊ = पसीना। हुलसै = प्रसन्न होते हैं। लोचन = आँख। लोल = चंचल। भृकुटी = भौंहें। कलकाम कमानहु सों तृन तोरै = कामदेव के चञ्चल धनुष से होड़ लगाती हैं। राजत = बिराजते हैं। कुरंग = मृग। निषंग = तूणीर, तरकस। सर = बाण।

(गीतावली)

पगनि कब चलिहौ चारिउ भैया ?
प्रेम पुलकि उर लाइ सुवन सब कहति सुमित्रा मैया ॥
सुन्दर तनु सिसु वसन बिभूपन नख सिख निरखि निकैया ।
दलि तृन प्रान निछावरि करि करि लैहैं मातु बलैया ।
किलकनि नटनि चलनि चितवनि भजि मिलनि मनोहरतैया ॥
मनि खंभनि प्रतिबिम्ब झलकि छवि छलकिहै भरि अँगनैया ।
बाल बिंनोद मोद मंजुल विधु लीला ललित जुन्हैया ।
भूपति पुन्य पयोधि उमंग घर घर आनंद बधैया ॥
ह्वैहैं सकल सुकृत सुख भाजन लोचन लाहु लुटैया ।
अनायास पाइहै जनम फल तोतरे बचन सुनैया ॥
भरत राम रिपुदवन लखन के चरित सरित अन्हवैया ।
तुलसी तबके से अजहुँ जानबे रघुबर नगर बसैया ॥

(राग केदारा)

चुपरि उबटि अन्हवाइ के नैन आँजै,
चिर रुचि तिलक गोरोचन को कियो है ॥

पगनि = पैरों से । सुवन = पुत्र, बेटा । मैया = माता । निरखि = देखकर । निकैया = सुन्दरता । दलि तृण = तृण तोड़ कर । लैहैं = लेंगी । नटनि = नाचना । भजि = भाग कर । मनोहरतैया = मनोहरता, सुन्दरता । प्रतिविम्ब = परछाईं । विधु = चन्द्रमा । जुन्हैया = तारे । पुन्यपयोधि = पुण्य का समुद्र । सुकृत = पुण्य । लाहु = लाभ, सफलता । लुटैया = लूटने वाले । रिपुदवन = शत्रुघ्न । अन्हवैया = स्नान करने वाले । तब के से = पहले के समान । अजहुँ = आज भी । चुपरि = चुपड़ कर । अन्हवाइ = स्नान करा कर । नैन = आँख । आँजै = अंजन लगाती है । गोरोचन = सुगन्धित द्रव्य विशेष ।

भूपर अनूप भासे बिन्दु बारे बारे बार,
बिलसत सीस पर हेरि हरै हियो है ॥
मोद भरी गोद लिये लालति सुमित्रा देखि,
देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है ॥
मातु पितु प्रिय परिजन पुरजन धन्य,
पुन्य पुंज पेखि पेखि प्रेम रस पियो है ॥

राग बिलावल

सोहत सहज सुहाये नैन ।

खंजन मीन कमल सकुचत तव जब उपमा चाहत कबि दैन ॥
सुन्दर सब अंगनि सिसु भूषन राजत जनु सोभा आये लैन ।
बड़ो लाभ लालची लोभ बस रहिगै लखि सुखमा बहु मैन ॥
भोर भूप लिये गोद मोद भरे निरखत बदन सुनत कल बैन ।
बालक रूप अनूप राम छबि निबसति तुलसिदास उर ऐन ॥

मसि विन्दु = स्याही की बूँद । बारे बारे = छोटे छोटे । बार = केश । सीस = सिर । हेरि = देखकर । हरै = हरण कर लेता है । मोदभरी = प्रसन्न । लालति = लाड़ प्यार कर रही है । उपवियो है = उदय हुआ है । परिजन = घर के लोग । पुरजन = नगर के लोग । पेखि = देखकर ।

सहज = स्वाभाविक । खंजन = पक्षी । मीन = मछली । कमल = जल में उत्पन्न होने वाला एक फूल । सकुचत = संकुचित हो जाता है । राजत = विराजमान है । जनु = मानो । लैन = लेने के लिए । रहिगै = रह गया । सुषमा = सुन्दरता । मैन = कामदेव । भोर = प्रातः काल, सबेरा । कल बैन = तोतली बोली । निवसति = निवास करती है । ऐन = मन्दिर, निवास स्थान ।

(राग कल्याण)

मुनि के संग बिराजत बीर।
काकपच्छ धर कर कोदंड सर सुभग पीत पट कटि तूनीर॥
बदन इन्दु अम्भोरुह लोचन स्याम गौर सोभा सदन सरीर।
पुलकत ऋषि अवलोकि अमित छवि उर न समाति प्रेम की भीर॥
खेलत चलत करत मग कौतुक बिलँबत सरित सरोवर तीर।
तोरत लता सुमन सरसीरुह पियत सुधा सम सीतल नीर॥
बैठत बिमल सिलनि बिटपनि तर पुनि पुनि बरनत छाँह समीर।
देखत नटत केकि कल गावत मधुप मराल कोकिला कीर॥
नयननि को फल लेत निरखि खग मृग सुरभी ब्रजबधू अहीर।
तुलसी प्रभुहिं देत सब आसन निज निज मन मृदु कमल कुटीर॥

काकपच्छ धर = जहाँ तहाँ रखाये हुए सिर के बड़े बड़े बाल। कोदण्ड = धनुष। सर = बाण। कटि = कमर। तूनीर = तरकस। बदन = मुँह। इन्दु = चन्द्रमा। अंभोरुह = कमल। लोचन = आँखें। सदन = निवास। अवलोकि = देख कर। अमित = अधिक, बहुत भीर = भीड़। मग = रास्ते में। कौतुक = तमाशा। बिलबँत = बिलम्ब करते, ठहरते हुए। सरित = नदी। सरोवर = तालाब। तीर = तट पर। सुमन = फूल। सरसीरुह = कमल। सुधा = अमृत। सीतल = ठंढा। नीर = जल। सिलनि = पत्थरों। विटपनि = वृक्षों। तर = तले, नीचे, छाया में। छाँह = छाया। समीर = हवा। नटत = नाचते हुए। केकी = मयूरी। मधुप = भौंरा। मराल = हंस। कोकिला = कोयल। कीर = तोता। खग = पक्षी। मृग = हरिन। सुरभी = गौएँ। ब्रजबधू = गोपियाँ। देत सब...... कुटीर = अपने अपने कोमल हृदय कमल के कुटीर में सब लोग आसन देते हैं।

(गीतावली)

कैकई जब लौं जियति रही।

तौलौं बात मातु सों मुँह भरि भरत न भूलि कही ॥
मानी राम अधिक जननी ते जननिहु गँस न गही।
सीय लखन रिपुदवन रामरुख लखि सब की निबही ॥
लोक बेद मरजाद दोष गुन गति चित चखन चही।
तुलसी भरत समुझि सुनि राखी राम सनेह सही ॥

(विनय पत्रिका)

बावरो रावरो नाह भवानी।

दानि बड़ो दिन देत दए बिन बेद बड़ाई भानी ॥
निज घर की घर बात बिलोकहु हो तुम परम सयानी।
सिव को दई सम्पदा देखत श्री सारदा सिहानी ॥
जिन के भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयों नकवानी ॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिए औरहिं भीख भली मैं जानी ॥

लौं = तक। मुँह भरि = भर मुँह, भली प्रकार। गँस = बैर, शत्रुता। निबही = निभ गयी। मरजाद = मर्यादा। चखन = आँखों से। चही = देखा। सही = असली, अकृत्रिम।

बावरो = पागल। रावरो = आपका। नाह = नाथ, पति। भवानी = पार्वती। भानी = कही। सयानी = चतुर। दई = दी हुई। सिहानी = आश्चर्यित हुई। लिपि = लिखावट। निसानी = चिन्ह। रंकन = दरिद्रों। नाक = स्वर्गलोक। सँवारत = श्रृङ्गार करते हुए। नकवानी = नाक में दम आना, परेशान होना। जाचकता = मंगनपन। अकुलानी = व्याकुल होगयी। औरहिँ = दूसरे को।

प्रेम प्रसंसा बिनय व्यंगजुत सुनि बिधि की बरबानी।
तुलसी मुदित महेस मनहि मन जगत मातु मुसुकानी ॥

—०—

तू दयालु, दीन हौं, तु दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥
नाथ! तू अनाथ को अनाथ कौन मोसों।
मो समान आरत नहिं, आरतिहर तोसों ॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तुही ठाकुर, हौं चेरो।
तात मात गुरु सखा तू सब विधि हितु मेरो ॥
तोहि मोहि नाते अनेक मानिये जो भावैं।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु चरन सरन पावैं ॥

—०—

ऐसी मूढ़ता या मन की
परिहरि राम भगति सुर सरिता आस करत ओसकन की।
धूप समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति धन की ॥
नहिं तहँ सीतलता न बारि पुनि हानि होत लोचन की।
ज्यों गच काँच बिलोकि सेन जड़ छाँह आपने तन की ॥
टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की।

जुत = युक्त। विधि = ब्रह्मा। बर = श्रेष्ठ। मुदित = प्रसन्न हुए। जगत मातु = पार्वती। हौं = मैं। पातकी = पापी। पुंज = समूह। हारी = हरण करने, नष्ट करने वाला। मोसों = मुझसे। आरत = दुखी। भावे = अच्छा लगे।

मूढ़ता = मूर्खता। परिहरि = छोड़कर। सुरसरिता = गंगा। जानि-मति घनकी = बादल समझ कर। घन = बादल। बारि = जल। लोचन = आँख। गच = चबूतरा, पलस्तर। सेन = श्येन, बाज़। जड़ = मूर्ख, बुद्धिहीन। छाँह = छाया। आतुर = विह्वल। छति = हानि। बिसारि = भूलकर। आनन = मुँह।

कहँलौं कहौं कुचालि कृपानिधि जानत हौ गति मन की।
तुलसीदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाज निजपन की ॥

मैं हरि पतितपावन सुने।
मैं पतित तुम पतितपावन दोउ बानक बने ॥
ब्याध गनिका गज अजामिल साखि निगमनि भने।
और अधम अनेक तारे जात कापै गने ॥
जानि नाम अजानि लीन्हें नरक जमपुर मने।
दास तुलसी सरन आयो राखिए आपने ॥

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो छाँड़िए कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रहलाद बिभीषन बन्धु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो कन्त ब्रजबनितनि भए मुदमंगलकारी ॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परमहित पुँजी प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो ॥

कुचालि = बुरी चाल। निजपन = अपनेपनकी, अथवा अपनी प्रतिज्ञा की। बानक = वेष, साज। गनिका = वेश्या। गज = हाथी। साखि = साक्षी। निगम = पुराण आदि। भने = कहा है। कापै = किससे। गने = गिने। मने = दूर होगये, नष्ट हो गये। मनियत = मानते हैं। सुहृद = मित्र। सुसेव्य = भली सेवा करने के योग्य। लौं = तक। पुँजी = पूँजी, मूलधन। एतो = यही। मतो = मत, राय।

सूरदास

छाँड़ि मन हरि बिमुखन को सङ्ग ।
जाके सङ्ग कुबुद्धी उपजै परत भजन में भङ्ग ॥
कहा भयो पय पान कराये बिष नहिं तजत भुअङ्ग ।
काम क्रोध मद मोह लोभ में निसिदिन रहत उमङ्ग ॥
कागहिं कहा कपूर खवाए, स्वान न्हवाये गङ्ग ।
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषन अङ्ग ॥
पाहन पतित बान नहिं भेदत रीतो करत निषङ्ग ।
'सूरदास' खल कारी कामरि चढ़ै न दूजो रङ्ग ॥

प्रभु मेरे अवगुन न विचारो ।
धरि जिय लाज सरन आये की रबिसुत त्रास निवारो ॥

हरि विमुख = नास्तिक, जो ईश्वर को न मानते हों । भङ्ग = गड़बड़ी, अड़चन । कहा भयो = क्या हुआ । पय = दूध । पान कराये = पिलाने से । भुअङ्ग = साँप । उमङ्ग = उत्साह । कहा = क्या । खवाए = खिलाने से । स्वान = कुत्ता । न्हवाये = नहवाने, स्नान कराने से । खर = गधा । अरगजा = एक सुगन्धित उबटन जो शरीर में लगाया जाता है । मरकट = बन्दर । भूषण = गहना । पाहन ......भेदत = पत्थर पर फेंका हुआ तीर उसमें छेद नहीं करता । रीतो = खाली । निपङ्ग = तरकस । कारी = काली । दूजो = दूसरा ।

अवगुण = दोष । विचारो = ख्याल करो । रविसुत = यमराज । त्रास = डर, भय । निवारो = दूर करदो ।

जो गिरिपति मसि घोरि उदधि में लै सुरतरु निज हाथ।
ममकृत दोस लिखैं वसुधाभरि तऊ नहीं मिति नाथ॥
कपटी कुटिल कुचीलि कुदरसन अपराधी मतिहीन।
तुम्हहिं समान और नहिं दूजो जाहि भजौं ह्वै दीन॥
जोग जग्य जपतप नहिं कीनो बेद बिमल नहिं भाख्यो।
अति रसलुब्ध स्वान जूठनि ज्यों अनतै ही मन राख्यो॥
जिहिँ जिहिँ जोनि फिरौं सङ्कट बस तिहिँ तिहिँ यहै कमायो।
काम क्रोध मद लोभ ग्रसित ह्वै विषै परम विष खायो॥
अखिल अनन्त दयालु दयानिधि अघमोचन सुखरासि।
भजन प्रताप नाहिंनै जान्यो बँध्यो काल की फाँसि॥
तुम सरबग्य सबै बिधि समरथ असरन-सरन मुरारि।
मोह समुद्र 'सूर' बूड़त है लीजै भुजा पसारि॥

माधौ! वे भुज कहाँ दुराये?
जिनहिँ भुजनि-गोबर्द्धन धारयो, सुरपति गर्ब नसाये।
जिनहिँ भुजनि काली को नाथ्यो, कमल-नाल लै आये।

गिरिपति = हिमालय। मसि = स्याही। उदधि = समुद्र। सुरतरु = कल्पवृक्ष। ममकृत = मेरे किये हुए। वसुधाभरि = सारी पृथ्वी पर। मिति = हद, समाप्ति। कुचीलि = मलिन वस्त्र वाला। कुदरसन = देखने में बुरा। मतिहीन = मूर्ख। भाख्यो = कहा, पढ़ा। रसलुब्ध = रस का लोभी। अनतै = दूसरी जगह। जोनि = शरीर। कमायो = अर्जित किया, पाया। विषय = सांसारिक वासना। परम विष = भयानक ज़हर। अघमोचन = पापों का नाश करने वाले। नाहिंनै = नहीं ही। फाँसि = फन्दा। सरबग्य = सर्वज्ञ, सब जानने वाले। बूड़त = डूबता। दुराये = छिपाया। सुरपति = इन्द्र। गर्व = अभिमान। नसाये = नष्ट किया। काली = प्रसिद्ध सर्प। कमल नाल = डण्डी के सहित कमलका फूल।

जिनहिँ भुजनि प्रहलाद उबारयो, हिरन्याच्छ कों धाये॥
जिनहिँ भुजनि दाँवरी बँधाये, जमला मुकति पठाये।
जिनहिँ भुजनि गजदन्त उपारयो, मथुरा कंस ढहाये॥
जिनहीं भुजनि अघासुर मारयो, गोसुत गाय मिलाये।
तिहि भुज की बलि जाय 'सूर' जिन तिनका तोरि दिखाये॥

मोहि प्रभु! तुमसों हाड़ परी।
ना जानों करिहौ जु कहा तुम नागर नवल हरी॥
पतित समूहनि उद्धरिवे को तुम जिय जक पकरी।
मैं जू राजिव नैननि दुरि गयो, पाप पहार दरी॥
एक अधार साधु-सङ्गति को रचि-पचि कै सँचरी॥
भई न सोचि सोचि जिय राखी अपनी धरनि धरी।
मेरी मुकति विचारत हौ प्रभु पूँछत पहर घरी॥
स्रम तें तुम्हें पसीनो ऐहै कत यह जकनि करी।
'सूरदास' बिनती कहा बिनवै रोसहिँ देह भरी।
अपनो बिरद सँभारहुगे तब या में सब निनुरी॥

धाये = दौड़े, प्रहार करने के लिये झपटे। दाँवरी = रस्सी। जमला = यमलार्जुन, अर्जुन नामक वृक्ष का जोड़ा। मुकति पठाये = मुक्त कर दिया। गजदन्त = हाथी का दाँत। उपार्यो = उखाड़ा। ढहाये = नष्ट कर दिया, गिरा दिया। तिनका तोरि दिखाये = भीम-जरासन्ध युद्ध के समय जिन हाथों ने तिनका को चीर कर यह दिखाया था कि इसी तरह जरासन्ध को मार डालो।

होड़ = बाज़ी, बदाबदी। जक = ज़िद, हठ। दुरि = छिपा। दरी = गुफ़ा। रचि-पचि कै = मर मर कर, किसी प्रकार। सँचरी = सञ्चार किया, बरता। अपनी धरनि धरी = अपनी बात पकड़े रहा, अपने विचार पर अटल रहा। कत यह जकनि करी = क्या ज़िद की है। विरद = शरणागत, अपना जन। निनुरी = निपटारा, फैसला हो जायगा।

कहाँ लौं बरनौं सुन्दरताई ।
खेलत कुँवर कनक-आँगन मैं, नैन निरखि छवि छाई ॥
कुलहि लसत सिर स्याम सुभग अति बहु बिधि सुरँग बनाई ।
मानो नव घन ऊपर राजत मघवा धनुष चढ़ाई ॥
अति सुदेस मृदु चिकुर हरत मन मोहन मुख बगराई ।
मानो प्रगट कंज पर मञ्जुल अलि अवली घिरि आई ॥
नील सेत पर पीत लालमनि लटकन भाल लुनाई ।
सनि गुरु असुर देव गुरु मिलि मनौ भौम सहित समुदाई ॥
दूध दन्त दुति कहि न जाति अति अद्भुत एक उपमाई ।
किलकत, हँसत, दुरत, प्रकटत मनौ घन में बिज्जु छपाई ॥
खण्डित बचन देत पूरन सुख अलप जलप जलपाई ।
घुटुरुन चलत रेनु तनु मण्डित सूरदास बलि जाई ॥

कुलहि = बच्चों की टोपी । लसत = शोभित होता है । सुभग = सुन्दर । सुरँग = अच्छे रङ्ग वाला । घन = बादल । मघवा = इन्द्र । सुदेस = सुन्दर । चिकुर = बाल । बगराई = फैलाकर । कञ्ज = कमल । मञ्जुल = सुन्दर । अलि = भौंरा । अवली = समूह । सेत = स्वेत, सफ़ेद । लटकन = घुँघरू । लुनाई = सुन्दरता । गुरु-असुर = राक्षसों के गुरु, शुक्र । देवगुरु = बृहस्पति । भौम = मंगल । समुदाई = समूह । दुति = द्युति, चमक । दुरत = छिपते हैं । घन = बादल । बिज्जु = बिजली । खण्डित = टूटेफूटे । अलप जलप जलपाई = थोड़ा थोड़ा बोलते हैं, अस्फुट स्वर में बात चीत करते हैं । घुटुरुन = घुटनों के बल । रेनु = धूल । मण्डित = लगा हुआ, भरा हुआ ।

कबीर

पायो सतनाम गरे कै हरवा।
साँकर खटोलना रहनि हमारी दुबरे दुबरे पाँच कहरवा।
ताला कुंजी हमैं गुरु दीन्हीं जब चाहौं तब खोलौं किवरवा॥
प्रेम प्रीति की चुनरी हमारी जब चाहौं तब नाचौं सहरवा।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो बहुर न ऐबै एही नगरवा॥

कैसे दिन कटिहैं, जतन बताये जइयो।
एहिपार गंगा वोहि पार जमुना,
बिचवा मड़इया हमको छवाये जइयो॥
अँचरा फारि कै कागद बनाइन,
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयो॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
बहियाँ पकरि के रहिया बताये जइयो॥

करम गति टारे नाहिं टरी।
मुनि वशिष्ठ से पण्डित ज्ञानी सोधि के लगन धरी।
सीता हरन, मरन दशरथ को, बनमें बिपति परी॥

सतनाम = सत्यनाम, गुरु। हरवा = हार, माला। साँकर = सङ्कीर्ण, तङ्ग। दुबरे = पतले, दुबले। बहुर = पुनः, फिर। ऐबै = आऊँगा। एही = इस।

मड़इया = झोपड़ी। सुरतिया = स्मृति, याद। रहिया = रास्ता।

सोधि = जाँचकर, शुद्ध करके। लगन = लग्न, मुहूर्त।

कहँ वह फन्द कहाँ वह पारधि, कहँ वह मिरग चरी।
सीता को हरि लै गो रावन सुबरन लङ्क जरी॥
नीच हाथ हरिचन्द्र बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग गिरगिट जोनि परी॥
पाण्डव जिनके आपु सारथी तिन पर विपति परी।
दुरजोधन को गरब पटायो जदुकुल नास करी॥
राहु केतु और भानु चन्द्रमा विधि संयोग परी।
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी होके रही॥

तेरा मेरा मनुवाँ कैसे एक होइ रे।
मैं कहता हौं आँखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।
मैं कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरुझाइ रे॥
मैं कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोइ रे।
मैं कहता निर्मोही रहियो, तू जाता है मोहि रे॥
जुगन जुगन समझावत हारा, कहा न मानतै कोइ रे।
तू तो रंगी फिर बिहङ्गी, सब धन डारा खोइ रे॥
सतगुरु धारा निरमल बाहैं, वा में काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तबही वैसा होइ रे॥

फन्द = फन्दा। पारधि = परिधि, सीमा। मिरगचरी = मृग के पीछे चलने वाला, रामचन्द्र। लैगो = ले गया। सुवरन = सुवर्ण, सोना। पुन्न करत = पुण्य करते, दान देते थे। गिरगिट योनि परी = गिरगिट का शरीर पाया। गरब = गर्व, अभिमान। पटायो = नष्ट किया।

मनुवाँ = मन। कागद की लेखी = कागज़ का लिखा हुआ। सुरझावन = सुलझाना। अरुझाई = उलझाना। मोहि = मोहित। रंगी = रँगीला। बिहङ्गी = चिड़ियों की तरह। बाहैं = बहाते हैं। काया = शरीर।

तोहिँ मोरी लगन लगाये रे फकिरवा।
सोवत थी मैं अपने मन्दिर में, सबदन मारि जगाये रे, फ०।
बूड़त ही भव के सागर में, बहियाँ पकरि समुझाये रे, फ०।
एकै बचन बचन नहिं दूजा, तुम मोसे बन्द छुड़ाये रे, फ०।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सत्त नाम गुन गाये रे, फ०।

———

लोका मति का भोरा रे।
जो कासी तन तजै कबीरा रामै कौन निहोरा रे॥
राम भगति पर जाको हित चित ताको अचरज काहा।
गुरू प्रताप साधु सङ्गति जग जीते जाति जोलाहा॥
कहत कबीर सुनौ रे सन्तो भरम परौ जनि कोई।
जस कासी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई॥

———

लगन = प्रीति। मन्दिर = घर। सबदन = शब्द, गुरु की वाणी। बूड़त = डूबते हुए। बहियाँ = हाथ। बन्द = कपड़े का छोर।

लोका = लोग, दुनियाँ। निहोरा = प्रार्थना। अचरज = आश्चर्य। काहा = क्या। भरम = भ्रम। मगहा = मगध। ऊसर = परती ज़मीन।